भट्टारक सकलकीर्ति विरचित

# श्री धन्यकुमार चरित्र

◆ हिन्दी अनुवाद ◆

स्व. पं. उदयलाल कासलीवाल (बड़नगर)

◆ संयोजन ◆

ब्र. प्रदीप शास्त्री 'पीयूष'
श्री वर्णी दि. जैन गुरुकुल
पिसनहारी मढ़िया, जबलपुर (म.प्र.)

◆ प्रकाशक ◆

श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल
पिसनहारी मढ़िया, जबलपुर (म.प्र.)
श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति, बरेला
जबलपुर (म.प्र.)

प्रथम संस्करण – 5500 प्रतियाँ

मूल्य - 10-00

# अपनी बात

आचार्य श्री उमास्वामी जी महाराज द्वारा महान् ग्रन्थ तत्वार्थ - सूत्र के सातवें अध्याय में दान की परिभाषा निम्न शब्दों में व्यक्त की है। **'अनुग्रहार्थं स्वस्याति सर्गो दानम्'** अर्थात् अपने और पर के उपकार के लिये धन आदिक देना दान है। धन आदि यहाँ पर उपलक्षण हैं क्योंकि उत्तम पात्र आदि के लिए धन किञ्चित् भी उपयोगी नहीं है। परन्तु धन के माध्यम से उनके उपयोग में आने वाले उपकरणों (ग्रन्थ, कमण्डलू, पींछी आदि) को ग्रहण कर उन्हें दे सकता है।

गुणों के निधान गृह त्यागी मुनिराज जो कि उत्तम पात्र हैं उनके लिए स्वपर के धर्म की वृद्धि के लिए प्रतिदान या मंत्रलाभ आदि प्रत्युपकार की अपेक्षा के बिना यथाशक्ति यथावत् दान देना चाहिये।

आचार्यों ने दान के चार भेद कहे हैं - आहारदान, औषध दान, उपकरण दान (पींछी कमण्डलु, शास्त्रादि) तथा आवास (वसतिका) जैसे जल खून को धो देता है वैसे ही गृहत्यागी अतिथिजनों को यथायोग्य आहार आदि देना गृहस्थी के कामों से संचित पापों को परिपूर्णतया नष्ट कर देता है।

इन चारों दानों में शीर्षस्थ कोई दान है तो वह है आहार दान। क्योंकि आहार दान में शेष तीनों दान निहित है। आहार दान उस वट वृक्ष के बीज सदृश है जो अच्छी उपजाऊ जमीन में बोया जाये तो कालान्तर में वटवृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है। ठीक योग्य समय आदि में गृहत्यागी को दिया हुआ दान जीवों को उत्तम ऐश्वर्य और विभूति सहित इच्छानुसार भोगोपभोग आदि अनेक फलों को देता है।

भट्टारक सकलकीर्ति जी महाराज द्वारा सृजित श्रीधन्यकुमार चरित्र में धन्यकुमार के पूर्व भव की ऐसी ही घटना समायोजित है। यथा- धन्यकुमार के पूर्व भव की घटना इस प्रकार है - घर की आर्थिक परिस्थिति अनुकूल नहीं है। माँ और बेटा अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किञ्चित् अर्थ के लिए माँ किसी के

यहीं श्रम करती है। बेटा माँ से खीर खाने की अभिलाषा व्यक्त करता है। मालिक के द्वारा खीर की सामग्री दिये जाने पर, माँ बेटे के लिए खीर तैयार करती है। खीर बनने पर माँ कुयें पर पानी लेने जाती है और बेटे से कह जाती है कि कोई मुनिराज आये तो उन्हें जाने नहीं देना। माँ के जाने पर पुण्योदय से महिने के उपवास की पारणा करने के लिए सुव्रत मुनिराज घर की ओर आते हुए दिखे। माँ की बात का स्मरण होने पर, वह बालक अपने को पुण्यशाली समझने लगा। मुनिश्री के सम्मुख पहुँचकर अभिवन्दना कर आर्जवतामय मुनिश्री से अनुग्रह करने लगा।

हे पूज्य! मेरी माँ ने बहुत अच्छी खीर बनाई है वह आपके भोजन के लिए दी जावेगी। मेरी प्रार्थना है कि आप यहीं ठहरें तब तक जल लेकर मेरी माता भी आई जाती है। मुनिराज उसे यह समझाकर कि हमारा यह धर्म नहीं है। रास्ते में धीरे-धीरे चलने लगे इतने में वह भी उनके आगे होकर जोर से बोलने लगा।

हे तात! मेरे ऊपर दया कर थोड़ी देर ठहरो और यहाँ से न जाओ बड़ी ही अच्छी खीर बनी है।

इतनी प्रार्थना करने पर भी जब मुनिराज नहीं ठहरे तो वह बालक उनके पाँव पकड़कर जोर से बोला - देखो! अब तो मैंने अपने हाथों से आपको खूब ही जोर से पकड़ रखे हैं देखूँ कैसे जा सकोगे ? महाराज! आप बड़े ही दुर्लभ हैं। मुनिराज उसकी सहजता देखकर समौन वहीं खड़े रहे। इतने में शुभोदय से उसकी माता भी जल लेकर आ गई। मुनिराज को देखकर उसे बहुत खुशी हुई जैसे दुर्लभ धन के अनायास मिल जाने से खुशी होती है।

सिर पर से घड़ा जमीन पर उतार कर मुनिराज के श्री चरणों को नमस्कार किया और हे विभो! तिष्ठ! तिष्ठ!! तिष्ठ!!! कहकर स्वामी का पड़गाहन किया। नवधाभक्ति पूर्वक आहार देकर माँ-बेटे ने बड़ा भारी पुण्य का उपार्जन किया।

मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धि से विभूषित थे। शास्त्रों का यह लेख है कि - जिस दाता के यहाँ उक्त ऋद्धिधारक साधुओं का आहार हो जाता है फिर उस दिन उसके यहाँ भोजन सामग्री कम नहीं होती है। उसमें चक्रवर्ती के सैन्य तक का

भोजन हो सकता है। ठीक ऐसा ही उस घर में ऋद्धिधारी मुनिराज का आहार होने से हुआ - भोजन सामग्री अक्षय हो गई। यही अल्प दान कालान्तर में धन्यकुमार के लिए वटवृक्ष के रूप में प्रादुर्भूत हुआ।

## धन्य कुमार नाम की सार्थकता -

धनपाल नामक वैश्य की प्रभावती नामक भार्या को गर्भ के शुभ चिह्न प्रगट दिखाई देने लगे और क्रम से जब नव महीने पूर्ण हुये तब पुण्यकर्म के उदय से प्रभावती ने उत्तम दिन तथा शुभ मुहूर्त की आदि में सुखपूर्वक सुन्दर कान्ति के धारक तेजस्वी, शुभलक्षणमण्डित शरीर के धारक, सुभग तथा मनोहर रूप से राजित उत्तम पुत्र रत्न उत्पन्न किया। यह पुत्र वास्तव में पुण्यशाली था। अतः उसकी नाल गाड़ने के लिए जब पृथ्वी खोदी गई तब धन से भरी बड़ी भारी कढ़ाई निकली तथा इसी तरह जब उसके मज्जन के लिये भी खोदा गया तब भी पृथ्वी के भीतर से धन का भरा हुआ दूसरा भाजन निकला।

धनपाल इस आश्चर्य को देखकर उसी समय राजा के पास दौड़ा गया और कहने लगा कि - विभो! मुझे उत्तम पुत्र की प्राप्ति हुई और साथ ही साथ बहुत धन भी मिला है धनपाल के वचन सुनकर महाराज अवनिपाल से बोले - श्रेष्ठिन्! जिस पुत्र के पुण्य से वह धन निकला है उसका मालिक भी वही पुण्यशाली है। मुझे किसी के धन की अभिलाषा नहीं है। महाराज की इस प्रकार निःस्पृहता से धनपाल को बहुत सन्तोष हुआ।

बन्धु लोगों ने विचारा कि अहो! इसी कुल दीपक उत्तमपुत्र के उत्पन्न होने का ही तो यह फल है जो हम आज धन्य तथा कृतार्थ हुए हैं। इसी विचार से उन्होंने पुत्र का भी शुभ नाम धन्यकुमार ही रख दिया।

इस प्रकार ग्रन्थ के अन्तर्गत धन्यकुमार नाम की सार्थकता सिद्ध होती है।

## ग्रन्थ में उल्लेखित सूक्तियाँ -

* शुभ कर्म ही एक वस्तु है जो नहीं प्राप्त होने वाली अत्यन्त दुर्लभ, बहुत दूर की तथा बहुत धन के मिलने वाली को स्वयं मिला देता है।

* संसार में ऐसा कौन बुरा काम है जिसे पापी लोग न करते हों किन्तु नियम से करते हैं।

* संसार में बाह्य शत्रुओं का भय बना रहता है इसलिये वे छोड़े जा सकते हैं परन्तु घर का पुरुष यदि शत्रु हो जाय तो बहुत बुरा होता है।

* इस संसार में मनुष्यों के कर्म की विचित्रता! जो कभी स्वामी होते हैं वे तो नौकर हो जाते हैं और जो नौकर होते हैं वे स्वामी हो जाते हैं।

* जब पुण्य का उदय होता है तब कहीं न कहीं से अपनी इच्छा के अनुसार कारण भी जरूर मिल जाते हैं।

इस प्रकार की अनेक सूक्तियों और घटनाओं से अनुमोदित इस धन्यकुमार चरित्र को गुम्फित किया गया है।

ग्रन्थकर्ता इसके पढ़ने के फल को प्रकट करते हुए संकल्पित हो रहे हैं। यथा-

जिस चरित्र के सुनने से भव्य-पुरुषों के राग रूप शत्रु तो नाश होंगे और संवेग तथा समाधि आदि गुण समूह समुद्‌भूत होंगे।

मैं इस धन्यकुमार के चरित्र के द्वारा - स्वर्ग की सम्पदा के सुख का कारण बड़े-बड़े उत्तम पात्रों के दान का शुभ फल कीर्तन करूँगा।

यह चरित्र दान की ही महिमा वर्णन करने वाला है व दान करने से ही धन्यकुमार कैसे भाग्यशाली हुए, किस प्रकार की तपस्या कर सर्वार्थसिद्धि के देवत्व को प्राप्त हुए, यह सब वर्णन इस चरित्र में मिलेगा।

इसके पढ़ने पर आप अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त कर गार्हस्थ जीवन को सफल बनायें ऐसी आशा से .....।

श्री वर्णी दि. जैन गुरुकुल
पिसनहारी मढ़िया
जबलपुर (म.प्र.)

ब्र. प्रदीप कुमार जैन 'पीयूष'

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

भट्टारक श्री सकलकीर्तिजी विरचित

# श्री धन्यकुमार चरित्र

## (भाषानुवाद)

श्री शोभित तुव वदनशशि, हरै जगतजन ताप ।
इह कारण पदपद्म तुव, नमहुं नाथ! त्रयकाल ॥

शिव-सुखदाय आपको, कहैं जगत में लोक ।
क्यों न हरौ भव-गहनवन, भ्रमण नाथ! हे शोक ॥

अखिल अमित भूलोक में, तुम सम नहीं दयाल ।
दयापात्र फिर क्यों न मैं ? विभो! दीनजनपाल ॥

आनंदकंद जिनेश! अब, गह करके मम हाथ ।
अतिगंभीर जगजलधिसे, करौ पार जननाथ! ॥

सकलकीर्ति मुनिराजने, संस्कृत में सुविशाल ।
विरचौ धन्यकुमारको, चरित अमित गुणमाल ॥

तिहिं भाषा मैं अल्पधी, लिखूँ स्वपर सुख हेतु ।
इस महान शुभकार्य में, नाथ! बनहु सुखसेतु ॥

# पहिला अधिकार

## ग्रन्थारम्भ

गर्भकल्याण, जन्मकल्याण, दीक्षाकल्याण, ज्ञान-कल्याण और निर्वाणकल्याण के अनुभोक्ता, त्रिभुवन के स्वामी, शिवरमणी के नाथ तथा गुणों के समुद्र श्री वर्द्धमान जिनभगवान के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ।।१।।

अन्तरंग तथा बहिरंग लक्ष्मी से विभूषित, आरम्भ में धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तन करने वाले, धर्म के स्वामी तथा अनन्त गुणों के आकर श्री वृषभनाथ भगवान के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ।।२।।

सम्पूर्ण मंगल के करने वाले, लोक श्रेष्ठ, सज्जन पुरुषों के लिये आश्रयस्थान तथा जगत के हित करने वाले शेष समस्त तीर्थंकरों को मैं नमस्कार करता हूँ ।।३।।

मनुष्य देव और विद्याधरों के अधिपति तथा गणधरादि से विशोभित, ढाईद्वीप में विहार करने वाले जो श्री सीमन्धर स्वामी प्रभृति मोक्षमार्ग के प्रकाश करने वाले बीस तीर्थंकर हैं उन्हें विनत मस्तक से मैं नमस्कार करता हूँ ।।४-५।।

ये उपर्युक्त तीर्थंकर तथा और जो त्रिकाल में होने वाले हैं,

मेरे द्वारा नमस्कार तथा स्तवन किये हुये वे सब मेरे आरम्भ किये हुये काम की सिद्धि के लिये हों ॥६॥

ज्ञानावरणादि आठ कर्म तथा शरीर से विरहित सम्यक्त्वादि आठ महागुणों से विभूषित, तीन लोक के शिखर पर अवरूढ़, इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि से नमस्कार किये हुये, अनन्त गुणों के स्थान तथा उत्तम गुणों की अभिलाषा करने वाले भव्य पुरुषों के द्वारा ध्यान करने योग्य सिद्ध भगवान का मैं प्रतिदिन स्मरण करता हूँ ॥७-८॥

छत्तीस गुण विराजमान, दर्शनाचार, ज्ञानाचारादि पञ्चाचार के परिपालन करने में तत्पर, त्रिभुवन के द्वारा अभिवन्दनीय तथा शिष्यों पर दया करने वाले आचार्यों के लिये मैं अभिवन्दन करता हूँ ॥९॥

जो अपने जन्म रूप आताप के नाश करने के लिये अङ्ग पूर्व रूप पीयूष रस का स्वयं पान करते हैं तथा और भव्य जीवों को पिलाते हैं ऐसे उपाध्यायों का अपने आत्मस्वरूप की समुपलब्धि के लिए स्तवन करता हूँ ॥१०॥

जो अखण्ड रत्नत्रय तथा आश्चर्य जनक योग का त्रिकाल साधन करते हैं वे साधुराज शिव प्राप्ति के लिए मुझे शक्ति प्रदान करें ॥११॥

सम्पूर्ण ऋद्धि तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान से विभूषित, गुणों के समुद्र, त्रिभुवनाधिपति से

वंदनीय तथा पूजनीय और सम्पूर्ण अङ्गों की रचना करने में सचमुच वृषभसेन प्रभृति गौतमगणधर पर्यन्त सर्व गणधरादि मेरे द्वारा स्तवन किये अपनी-२ बुद्धि के प्रदान करने वाले हों ॥१२-१३॥

सम्पूर्ण सिद्धान्त रूप वारिधि के पार को प्राप्त हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप अनर्घ रत्न से अलंकृत, परिग्रह रहित, तथा दिशा रूप वस्त्र के धारण करने वाले और कितने कुन्दकुन्दादि विद्वान कविराज इस संसार में प्रसिद्ध हुये हैं। तथा गुणों से गुरुत्व पद को धारण करने वाले हैं। उन सब उत्तम-२ महात्माओं का मैं स्तवन करता हूँ ॥१४-१५॥

ग्यारह अंग चतुर्दश पूर्व तथा प्रकीर्ण रूप शरीर के धारण करने वाली, सम्यग्दर्शनादि रत्नालंकार से विराजित, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ के वर्णन से युक्त, अनन्त सुख की देने वाली, गुणों से विभूषित, जिनभगवान के मुख कमल से उत्पन्न तथा गणधर भगवान के द्वारा वृद्धि को प्राप्त भारती (सरस्वती) मेरे द्वारा स्तवन की हुई तथा नमस्कार की हुई सर्वार्थसिद्धि की प्राप्ति के कारण अथवा सम्पूर्ण अर्थ की सिद्धि के लिए हों ॥१६-१७॥

बाह्य तथा अन्तरङ्ग परिग्रह से विनिर्मुक्त, योग्य उत्तम-२ गुणों से विभूषित, सम्पूर्ण भव्य पुरुषों के हित करने में तत्पर, संसार रूप समुद्र के पार को प्राप्त हुये तथा सम्पूर्ण अर्थ की सिद्धि के साधन करने वाले धन्यकुमार प्रमुख बाकी के सब

योगिराजों को उनके गुणों की समुपलब्धि के लिये स्तवन करता हूँ ॥१८-१९॥

इस प्रकार उत्तम-२ मङ्गल करने वाले उत्कृष्ट तीर्थंकर भगवान, जिनवाणी तथा आचार्यादि साधुओं का स्तवन तथा अभिनन्दन करके मङ्गलसिद्धि, अपने आरम्भ किये हुये की सिद्धि, विघ्ननाश, मोक्ष सम्प्राप्ति तथा कर्मनाश प्रभृति कार्यों की सिद्धि के लिये अपने और दूसरों के हित की इच्छा से उत्तम वैश्य कुलदीपक तथा सर्वार्थसिद्धि में जाने वाले धन्यकुमार का शुभ और पवित्र चरित्र निर्माण करूँगा ॥२०-२२॥

जिस चरित्र के सुनने से भव्य पुरुषों के राग रूप शत्रु तो नाश होंगे और संवेग तथा समाधि आदि गुणसमूह समुद्‌भूत होंगे ॥२३॥

ग्रन्थकार कहते हैं कि मैं इस धन्यकुमार के चरित्र के द्वारा स्वर्ग की सम्पदा के सुख का कारण, बड़े-२ उत्तम पात्रों के दान का शुभ फल कीर्तन करूँगा ॥२४॥

यही कारण है कि - धन्य कुमार केवल पात्रदान के फल से राज्य सम्पदा से विराजित तथा स्वर्ग की लक्ष्मी का उपभोग करने वाला हुआ ॥२५॥

इस विशाल वसुन्धरा मण्डल पर जम्बूवृक्ष से उपलक्षित लाख योजन विस्तार वाला, तथा समुद्र से वेष्टित गोलाकार जम्बूद्वीप है। उसके मध्य में अत्यन्त मनोहर लाख योजन ऊंचा

और जिनमन्दिर देव तथा देवाङ्गनाओं से शोभायमान सुवर्णमय सुमेरु शैल है ।।२६-२७।।

उसके दक्षिण भाग में अतिशय सुन्दर तथा विद्याधर मनुष्य और देवताओं से शोभायमान धनुषाकार उत्तम भरतक्षेत्र है ।।२८।।

उसके ठीक बीच में अत्यन्त हृदयहारी, धर्म के सम्पादन का कारण, विद्वान तथा उत्तम-२ कुल में समुत्पन्न धर्मात्मा पुरुष तथा जिन भगवान आदि से विभूषित आर्यखण्ड है ।।२९।।

उसमें उत्तम-२ मनुष्यों से पूर्ण, ग्राम, खेट तथा पुर आदि से सुन्दर स्वर्ग और मोक्ष की समुपलब्धि का हेतुभूत अवन्ती नाम का देश है ।।३०।। जिसमें जगत के उपकार करने वाले आचार्य, उपाध्याय, साधु, गणधर तथा केवलज्ञानी ये अपनी-अपनी विभूति के साथ विहार करते हैं ।।३१।।

जहाँ-योगीन्द्र (साधु), जिनालय तथा धर्मात्माओं से पुर, पत्तन, खेट, ग्राम, गिरि तथा भुवनादि शोभायमान हैं ।।३२।। जिस देश में उत्पन्न हुए कितने बुद्धिमान पुरुष तो तपश्चरण द्वारा मोक्ष का साधन करते हैं, कितने सर्वार्थसिद्धि का तथा कितने ग्रैवेयकादिका करते हैं ।।३३।।

कितने विचक्षण पुरुष सर्वज्ञ भगवान की परिचर्या के द्वारा सम्यग्दर्शन ग्रहण करते हैं। कितने इन्द्र पद को प्राप्त होते हैं तथा कितने दान के फल से भोगभूमि में जाते हैं ।।३४।। जिस देश में सम्पूर्ण अभ्युदय का हेतुभूत श्री जिनभगवान के द्वारा कहा हुआ धर्म, श्रावक मुनि तथा सुचतुर पुरुषों के द्वारा चलता है ।।३५।।

उसी धर्म के द्वारा अवन्ती निवासी भव्य पुरुष निरन्तर पद-पद में सुख, उत्तम-२ वस्तु तथा सम्पत्ति को प्राप्त होते हैं ॥३६॥ जिस देश में - धर्मात्मा पुरुष अपने अनुकूल आचार तथा गुणों के द्वारा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष तक का साधन करते हैं तो उस देश में और -२ सामान्य विषय के साधन की हम कहाँ तक कहें ? ॥३७॥

उसी अवन्ती देश के बीच में नाभि के समान सुविशाल, विद्वान, धर्मात्मा, उन्नत-२ चैत्यालय तथा महोत्सव से मनोहर उज्जयिनी नाम की पुरी है ॥३८॥ वह बड़े-२ उन्नत गोपुर, प्राकार, खातिका तथा सुभटों से युक्त होने से लोक में अयोध्या के समान शत्रुओं से अलङ्घनीय मालूम होती है ॥३९॥

जिस नगरी में श्रावक तथा श्राविकाओं से पूर्ण, जिन प्रतिमाओं से सुन्दर ऊंचे-२ जिन मन्दिर वाद्य तथा धनवान लोगों से शोभायमान हैं ॥४०॥ जिसमें धर्मात्मा पुरुष प्रातः काल ही शय्या से उठकर निरन्तर सामायिक स्तवन तथा ध्यानादि से उत्तम धर्म का सम्पादन करते रहते हैं ॥४१॥

और अपने गृह में तथा जिनालय में तीर्थंकर भगवान की पूजन करके मध्याह्न समय में पात्र दान के लिये गृह द्वार पर साधुओं का समवलोकन करते रहते हैं ॥४२॥ तथा दिन भर में उत्पन्न हुये पाप कर्मों के विनाश के लिये और शुभ कर्म की समुपलब्धि के लिये शुद्धिपूर्वक सामायिक तथा महामंत्र का संचिंतवन करते हैं ॥४३॥

इसी प्रकार और-२ शुभाचरण व्रत तथा शीलादि पालन तथा पर्व तिथि में उपवास पूजनादि के द्वारा पुरवासी लोग धर्म का सेवन करते हैं ।।४४।। पश्चात् उसी के फल से उन्हें इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले सुख, भोगोपभोग, सम्पत्ति, सुन्दर स्त्रियाँ तथा बालक अपनी इच्छा के अनुसार प्राप्त होते हैं ।।४५।।

अहो! देवता लोग भी शिव-सुख की सम्प्राप्ति के लिये जिस उज्जयिनीपुरी में अपने अवतार होने की इच्छा करते हैं अथवा और कोई ऊँचे पद की प्राप्ति के लिये भी तो उस पुरी का और क्या उत्तम कीर्तन होगा ? ।।४६।। इत्यादि वर्णन से उपलक्षित उज्जयिनीपुरी में प्रतापी, धर्मबुद्धि तथा धर्मात्माओं से अत्यन्त अनुराग करने वाले अवनिपाल नामक राजा है ।।४७।।

और सरल हृदय धनपाल नाम का एक वैश्य रहता है। तथा शुभ-२ लक्षणों से विराजित प्रभावती नामक उसकी भार्या है ।।४८।। उन दोनों के परस्पर में अत्यन्त प्रेम करने वाले तथा गुण और सुन्दर-२ लक्षणों से समान देवदत्त प्रभृति सात पुत्र हुये ।।४९।। उनमें कितने बालक तो अक्षराभ्यास करने लगे और बाकी के बड़े पुत्र धन सम्पादन के लिये व्यापार करने लगे ।।५०।।

पश्चात किसी दिन प्रभावती अन्तिम चतुर्थस्नान करके प्राणनाथ के साथ-२ शय्या में सोई थी सो उसने शुभोदय से रात्रि के पिछले प्रहर में अपने गृहद्वार में प्रवेश करते हुये उन्नत वृषभ, कल्पतरु तथा कान्तिशाली चन्द्रादि शुभ ग्रहों को देखे। इसे स्वप्न देखने से बहुत आनन्द हुआ। बाद में प्रातःकाल होते

ही शय्या से उठी और सब धार्मिक क्रियायें करके स्वामी के पास गई। और अपनी मधुर-२ वाणी से पुत्र के अभ्युदय सूचक देखे हुये शुभ स्वप्नों को निवेदन किये।

स्वप्न के सुनने से धनपाल को भी बहुत सन्तोष हुआ। बाद में वह कहने लगा - प्रिये! इन शुभ स्वप्नों के फल से तो मालूम होता है कि - तुम्हें दानी, ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले, उत्तम वैश्यकुल रूप गगनमण्डल में गमन करने वाला सूर्य तथा अपने सुन्दर-२ गुण और उज्ज्वल सुयश के द्वारा त्रिभुवन को धवलित करने वाले महान पुत्र-रत्न की समुपलब्धि होगी।

प्राणनाथ के वचनों से प्रभावती को ठीक वैसा ही आनन्द हुआ जैसा खास पुत्र की सम्प्राप्ति से होता है। इसके बाद फिर गर्भ के शुभ चिह्न प्रगट दिखाई देने लगे और क्रम से जब नव महीने पूर्ण हुये तब पुण्यकर्म के उदय से प्रभावती ने उत्तम दिन तथा शुभ मुहूर्त्त की आदि में सुख पूर्वक सुन्दर कान्ति के धारक, तेजस्वी, शुभलक्षणमण्डित शरीर के धारक, सुभग तथा मनोहर रूप से राजित उत्तम पुत्ररत्न उत्पन्न किया। यह पुत्र वास्तव में पुण्यशाली था अतः उसकी नाल गाढ़ने के लिये जब पृथ्वी खोदी गई तब धन से भरी हुई बड़ी भारी कढ़ाई निकली तथा इसी तरह जब उसके मज्जन के लिये भी खोदा गया तब भी पृथ्वी के भीतर से धन का भरा हुआ दूसरा भाजन निकला।

धनपाल इस आश्चर्य को देखकर उसी समय राजा के पास

दौड़ा गया और कहने लगा कि - विभो! मुझे उत्तम पुत्र की प्राप्ति हुई है और साथ ही साथ बहुत धन भी मिला है। धनपाल के वचन सुनकर महाराज अवनिपाल बोले - श्रेष्ठिन्! जिस पुत्र के पुण्य से वह धन निकला है उसका मालिक भी वही पुण्यशाली है। मुझे किसी के धन की अभिलाषा नहीं है। महाराज की इस प्रकार की निस्पृहता से धनपाल को बहुत संतोष हुआ। बाद में वहाँ से गृह पर आकर सौध के जिनालय में महाविभूति पूर्वक समस्त कल्याणकर्म की कारण भूत विघ्नों के नाश करने वाली जिन भगवान की महापूजा की नाना प्रकार के दानादि से अपने कुटुम्बीजनों को तथा याचक लोगों को सन्तोष किया। और बन्धुओं के साथ साथ गीत, नृत्य, वादित्र, ध्वजा, तोरणमाला प्रभृति महोत्सव पूर्वक पुत्र के उत्पन्न होने का उत्सव किया ॥५१-६०॥ और फिर दशवें दिन बहुत धन खर्चकर सर्व जिन चैत्यालयों में जिनेन्द्र की पूजन की तथा बंधु लोगों को और याचक लोगों को उनकी इच्छा अनुसार सन्तोषित किया।

बन्धु लोगों ने विचारा कि - अहो ! इसी कुलदीपक उत्तम पुत्र के उत्पन्न होने का ही तो फल है जो हम आज धन्य तथा कृतार्थ हुये हैं। इसी विचार से उन्होंने पुत्र का भी शुभ नाम धन्यकुमार रख दिया। पश्चात्- सुन्दर स्वरूप-शाली, लोगों के लोचनों का प्रेम भाजन तथा अपने योग्य अलंकारों से अलंकृत धन्यकुमार भी माता पितादि बंधुओं को दुग्धपानादि सुमधुर मधुर

चेष्टाओं से आनन्द देने लगा तथा बुद्धि शरीर, सौन्दर्यतादि से दिनों दिन कुमुदबान्धव के समान बढ़ने लगा। और धीरे-धीरे मुग्धावस्था को उल्लंघन कर कुमार अवस्था में आया और मनोहर गुणों के द्वारा देवकुमार के समान बढ़ने लगा।

उस समय धनपाल ने - देव, शास्त्र तथा साधुओं की भक्ति पूर्वक परिचर्या कर विद्या, कला, विज्ञान प्रभृति गुणों की समुपलब्धि लिये धन्यकुमार को उपाध्याय के पास महोत्सव-पूर्वक पढ़ने को बैठाया। बुद्धिमान धन्यकुमार भी थोड़े ही समय में उत्तम बुद्धि रूप नौका के द्वारा शास्त्र-नीरधि के पार हो गया। पश्चात् धीरे-धीरे युवावस्था में - अनेक शास्त्रों का अनुभवी ज्ञान तथा कला कौशल का जानने वाला, विचारशील, उत्तम गुणों का आश्रय, बुद्धिमान, सुयश से सारे वसुन्धरा वलय में प्रसिद्ध, शुभ लक्षणादि से शोभित, सुन्दर शरीर का धारक, रूप लावण्य भूषण-वसन और पुष्पमालादि से विराजित होकर ऐसा शोभने लगा जैसा काम देव श्री के द्वारा शोभता है। धन्यकुमार इस अवस्था में भी प्रमादी न होकर निरंतर धर्मसम्पादन के लिये प्रचुर धन लगाकर देव गुरु सिद्धांत की परिचर्या किया करता था और शुभ भावों से अपनी इच्छानुसार दीन अनाथ लोगों के लिये दयाबुद्धि से दानादि दिया करता था। इसी तरह सम्पदा का उपभोग पूर्वक कुमार अवस्था के योग्य सुखजनक भोगों का अनुभव करते करते बहुत दिन बीते।

निरन्तर इसी प्रकार लक्ष्मी के व्यय करने की उसकी उदारता को उसके भाई लोग सहन नहीं कर सके। सो किसी दिन उन दुर्बुद्धियों ने अपनी माता से कहा -देखो ! हम सब तो धन कमावें और उसका खाने वाला यह केवल धन्यकुमार, जो कभी कुछ व्यापार नहीं करता।

प्रभावती ने - पुत्रों की राम कहानी अपने स्वामी से कह सुनाई और साथ में कहा कि देखो- धन्यकुमार अब सब तरह सौभाग्य सम्पन्न हो गया है उसे आप व्यापार में क्यों नहीं लगाते? व्यापार न करने से ही बड़े भाई उससे द्वेष करते रहते हैं।

अपनी कांता के वचनानुसार धनपाल ने शुभ मुहूर्त में सुपुत्र धन्यकुमार को किसी तरह बाजार में ले गया और उसे सौ दीनार देकर बोला - प्यारे ! यह द्रव्य लेओ। और इसके द्वारा यदि कोई किसी वस्तु को बेचने के लिए लावे तो तुम उसे खरीद लेना तथा उससे भी किसी और वस्तु को अच्छी देखकर खरीदना। सो इसी तरह जबतक भोजन का समय न आ जावे तब तक व्यापार करते रहना फिर अन्त में जो वस्तु खरीदी हो उसे नौकर के हाथ से उठवाकर भोजन करने लिये घर पर आ जाना। इसप्रकार समझाकर धनपाल तो घर चला गया। और सरल-हृदय तथा सौन्दर्य शाली धन्यकुमार नौकर के साथ साथ वहीं पर ठहरा। इतने में कोई पुरुष लकड़ी की भरी हुई एक उत्तम गाड़ी बेचने के लिए वहीं पर लाया। धन्यकुमार ने पिता का दिया हुआ धन उसे

देकर उससे वह गाड़ी खरीद ली। और फिर गाड़ी के द्वारा अपनी इच्छानुसार एक मैढ़ा मौल ले लिया। मैढें को भी किसी दूसरे को देकर उससे चार खाट के पाये खरीद लिये। बाद में अपने घर पर आ गया। उस समय धन्यकुमार की माता बहुत - आनन्दित हुई और कहने लगी कि अहो ! आज पहले ही दिन मेरा पुत्र व्यापार करके आया है। इसलिए उत्सव करना चाहिये।

उधर वे आठ पुत्र देखकर कहने लगे कि-देखो ! यह कितने आश्चर्य की बात है जो आज ही तो पिताजी ने व्यापार करने के लिये सो दीनारे दी थीं और पहले ही दिन उन्हें खोकर चला आया तो भी हमारी माता उत्सव कर रही है और हम लोग बहुत धन कमाकर लाते हैं फिर भी हमारे सामने तक न देखकर उल्टी उदासीन रहतीं हैं . अस्तु ! इसमें इनका क्या दोष है किन्तु दोष हमारे पूर्वोपार्जित कर्मों का।

पुत्रों के वचनों को सुनकर प्रभावती ने उन्हें हृदय में रख लिये और फिर सब पुत्रों से पहले ही धन्यकुमार को भोजन कराकर स्वयं भी भोजन कर लिया। पश्चात् - एक बड़े भारी काष्ठ के भाजन में जल भर कर प्रीति पूर्वक अपने ही हाथ से खाट के पायों को धोने लगी। धोने के साथ ही पायों का कुछ भाग दूर जा गिरा। और शेष भाग से कुमार के प्रचुर पुण्योदय से देदीप्यमान अनेक रत्न गिरने लगे और उसी में एक व्यवस्था पत्र भी निकला। तो कदाचित् कोई कहे कि - ये खाट के पाये किसके हैं ? यह पत्र किसने लिखा ? तथा इसमें पत्र कहाँ से

छोड़ कर शुभोदय से सुख-निकेतन स्वर्ग में गया। सेठ जी को स्वर्ग वास हो जाने के बाद -बिचारे शेष घर के लोग भी अशुभ कर्मोदय से मरकर कितने नरक में, कितने अपने २ कर्मों के अनुसार गतियों में गये। इनमें जो सबके पीछे मरा था उसे जलाने के लिये खाट सहित श्मशान भूमि में लिवा ले गये। उन्ही खाट के पायों को शुभोदय से धन्यकुमार ने चाण्डाल के हाथ से खरीदे।

ग्रन्थाकार कहते हैं कि - अहो ! शुभ कर्म ही एक ऐसी वस्तु है जो नहीं प्राप्त होने वाली, अत्यन्त दुर्लभ, बहुत दूर की तथा बहुत धन के द्वारा मिलने वाली वस्तु को स्वयं मिला देता है।

धन्यकुमार को पत्र के बांचने से बहुत खुशी हुई। वह उसमें जैसा लिखा था उसी के अनुसार निधियों के स्थानादि को ठीक-२ समझकर राजा के पास गया और उनसे युक्ति पूर्वक गृह के लिये अभ्यर्थना की। तथा अपने शुभोदय से आज्ञा मिल जाने पर घर के भीतर गया और वहाँ निधियों को देखकर आनंदित हुआ ॥१२२-१२३॥

बाद में उन उत्कृष्ट निधियों को अपने अधिकार में करके उनके द्वारा होनेवाले अपरिमित धन का व्यवहार मनोभिलषित फल के देने वाली देव गुरु तथा शास्त्र की महापूजा में, सत्पात्रों के लिये पुण्य सम्पदान के कारण दान के देनें में दीन तथा अनाथों के लिये उनकी इच्छानुसार दया दान करने में तथा प्रचुर विभूति से जिन धर्मियों का उपकार करने लगा।

आया ? इन सब प्रश्नों का उत्तर नीचे लिखा जाता है -

पहले इसी नगरी में पुण्यशाली तथा महाधनी वसुमित्र नाम का राजश्रेष्ठि हो गया है। सो प्रचुर शुभोदय से उसके यहाँ समस्त भोगोपभोग सम्पदा को देने वाली नवनिधियाँ पैदा हुई थी। एक दिन वसुमित्र ने उपवन में आये हुये अवधिज्ञानी मुनि से जाकर पूछा - विभो! आगे ऐसा कौन सा पुण्यात्मा नररत्न उत्पन्न होनेवाला है जो इन निधियों का स्वामी होगा? मुनिराज ने अवधिज्ञान के बल से कहा -

"महाराज ! अवनिपाल की उत्तम राजधानी में धनपाल वैश्य का धन्यकुमार नामक पुत्र उत्पन्न होने वाला है सो वही पूर्वोपार्जित पुण्योदय से इन निधियों का भी स्वामी होगा और उसके द्वारा लोगों को अद्भुत सुख सम्पत्ति प्राप्त होगा।" मुनिराज के वचनों को सुनकर वसुमित्र अपने घर गया और फिर मुनिराज के कथनानुसार यों व्यवस्था पत्र लिखा -

"श्री मान् महा मण्डलेश्वर महाराज अवनिपाल के सुराज्य में वैश्य कुल का उत्तम भूषण, धनी, भोगी तथा पुण्यशाली जो धन्यकुमार होने वाला है वही धन्यात्मा मेरे गृह में इस स्थान पर नव निधियों को स्वीकार कर सुख पूर्वक यहीं पर रहें।

इस प्रकार पत्र लिखकर पत्र को उत्तम-उत्तम रत्नों के साथ साथ खाट के पायों में बन्द कर सुखपूर्वक रहने लगा। पश्चात् सेठ तो आयु के अवसान समय में सल्लेखना पूर्वक प्राणों को

इसी तरह धन्यकुमार थोड़े दिनों में राज्यमान्य होकर त्रिभुवन विस्तृत सुयश के द्वारा उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार भोगों को भोगने लगा। धन्यकुमार अपने कुटुम्बी तथा और लोगों को भी बहुत प्रिय था। वह अपने शुभाचरण से धर्म सेवन करता हुआ सुखरूप पीयूष-समुद्र में निर्मग्न होकर कौतुक से बीते हुये समय को न जानकर सुख पूर्वक रहने लगा ॥१२४-१२८॥

अहो! धन्यकुमार अपने पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म के उदय से सर्वत्र आश्चर्य जनक भोग तथा सुख की सम्पादन करने वाली उत्तम सम्पत्ति-नव निधियों को प्राप्त हो कर मनुष्य तथा राजादि से मान्य सुख का सदैव उपभोग करता है, ऐसा समझकर जो पुरुष सुख के अभिलाषी है उन्हें चाहिये कि वे सदैव अपने पवित्र आचरणों से केवल एक पुण्य का उपार्जन करें ॥१२९॥

क्योंकि यही पुण्य, पुण्य तथा गुणों का आलय है, पाप का नाश करने वाला है, पुण्य का बुद्धिमान लोग आश्रय करते हैं पुण्य से समस्त सुख प्राप्त होते हैं, पुण्य की प्राप्ति के लिये ही पुण्य क्रियायें की जाती हैं, पुण्य से त्रिभुवन में होनें वाली लक्ष्मी प्राप्त होती है, पुण्य के सम्पादन करने का बीज व्रत का धारण करना है इसलिय बुद्धिमानों! सुख की समुपलब्धि के लिये निरन्तर पुण्य के उपार्जन करने में चित्त लगाओ ॥१३०॥

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र मे
धन्यकुमार का जन्म तथा उपनिधियों के लाभ का वर्णन
नामक पहिला अधिकार समाप्त हुआ ॥१॥

# द्वितीय अधिकार

जो धर्म के आदि प्रवर्तक हैं, जिन्हें त्रिभुवन-वर्ति समस्त लोग नमस्कार करते हैं, सारे वसुन्धरा मण्डल में जो उत्तम गिने जाते हैं, सज्जन पुरुषों के आश्रयाधार तथा अखिल संसार के जीवों का कल्याण करने वाले हैं, उन श्री जिनेन्द्र का मैं स्तवन करता हूँ।

एक दिन उज्जयिनी का ही रहने वाला कोई बुद्धिमान धन्यकुमार का कांतिशाली सुन्दर रूप देखकर उसके पिता से बोला- धनपाल! रति के समान सुन्दर एक बाला है। मेरी इच्छा है कि मैं उसे धन्यकुमार के लिये विवाह दूँ, जिससे वह अपनी इच्छानुसार सुखोपभोग कर सके। उसके उत्तर में धनपाल ने कहा - मैं तो इसे अच्छा नहीं समझता। आपको चाहिये कि हमसे भी जो ऐश्वर्यादि में बड़े हैं उनके लिये अपनी कन्या का संकल्प करें। उसने कहा - आपने कहा सो ठीक है, परन्तु मेरी यह इच्छा नहीं जो मैं उसे दूसरे के लिये देऊँ। इसलिए मैंने तो अपने हृदय में निश्चय कर लिया है कि जिस किसी समय देऊँगा तो धन्यकुमार के लिये ही देऊँगा।

इसी तरह और भी कितने बड़े-२ धनिक लोग कहने लगे कि हम भी अपनी कन्या का परिणय संस्कार धन्यकुमार के साथ ही करेंगे औरों के साथ नहीं। इस प्रकार दिनों दिन बढ़ते

हुये पुण्यशाली धन्यकुमार का अभ्युदय उसके बड़े भाईयों को सहन नहीं हुआ सो उसके साथ ईर्षा करने लगे और साथ ही उसका जीवन यात्रा का नाम शेष करने के लिये संकल्प किया।

उधर विचारे धन्यकुमार को शुभ कामों की ओर से बिल्कुल अवकाश नहीं मिलता था सो उसे यह कैसे मालूम हो सकता था कि मेरे ऊपर भाईयों के क्या-२ षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं।

**भावार्थ** - भाइयों के दुष्ट अभिप्रायों को वह न जान सका। सो किसी दिन वे पापी लोग कुछ विचार कर उपवन की वापिकाओं में जल क्रीड़ा के लिये धन्यकुमार को लिवा ले गये। विचारा सरल हृदय धन्यकुमार वापिका के किनारे बैठकर प्रीतिपूर्वक उन लोगों की जल लीला देखने लगा। इतने में उसके भाईयों में से एक कुटिल परिणामी पापी ने पीछे से आकर और गला दबा कर उस विशुद्ध बुद्धि को वापिका में उलट दिया। धन्यकुमार पाप के उदय से वापिका के गहरे जल में गिरा तो परन्तु गिरते-२ भी उसे महामन्त्र का स्मरण हो आया। उन पापात्मा को इतने पर भी जब सन्तोष न हुआ तब ऊपर से और भी निर्दयता पूर्वक उसके किसी प्रकार न जीने की इच्छा से पत्थर फेंकने लगे। पश्चात् यह समझकर कि अब वह नियम से अपने जीवन का भाग पूरा कर चुका होगा सो इसी विश्वास से किसी प्रकार सन्तोष मानकर घर की ओर लौट गये। ग्रंथकार कहते हैं कि -

"संसार में ऐसा कौन बुरा काम है जिसे पापी लोग न करते हों किन्तु नियम से करते हैं।"

उधर धन्यकुमार के बड़े भारी पुण्योदय से अथवा यों कहो कि महामंत्र की शक्ति से उसी समय जल देवता ने आकर धर्मात्मा धन्य कुमार को जल निकलने के द्वार से धीरे-२ बाहर निकाल दिया। यह बात ठीक है कि जिन लोगों ने पहले पुण्य संचय कर रखा है उनके आधीन देवता स्वयं हो जाते हैं, और आये हुये उपद्रवों का नाश कर उपकार करते हैं। इसी महामंत्र का ध्यान करने से जो शुभ कर्म का बंध होता है उससे दुष्टों के द्वारा किये हुए घोर उपद्रव सब नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार केसरी के द्वारा विचारे बड़े-२ गजराज क्षणभर में नामशेष हो जाते हैं। देखो! यह पुण्य ही का माहात्म्य है जो जलीय उपद्रव, स्थलीय उपद्रव, अकाल मृत्यु, चोर विभीषिका, राज विभीषका आदि विघ्नजाल बहुत जल्दी ही शांत हो जाते हैं। इसी से तो कहते हैं कि जल, स्थल, दुर्ग, अटवी आदि जनित भयावस्था में तथा मृत्युकाल में भी केवल एक धर्म ही सहाई होता है। इसीलिये बुद्धिमानों को चाहिये कि आपत्ति के समय में वास्तविक बंधु की तरह हित करने वाले तथा मरण प्रभृति अपाय के कारणों से रक्षा करने वाले धर्म का निरन्तर सम्पादन करें।

इसके बाद पुण्यात्मा धन्यकुमार निर्विघ्न बिना परिश्रम जल से बाहर निकल कर अपने नगर की ओर चला और शहर के बाहर पहुंचकर विचारने लगा कि - देखो! इस समय तो शुभोदय

से मरते -२ मैं किसी तरह बचा हूं, यदि फिर भी उन लोगों का संग रहेगा तो नहीं मालूम क्या होगा ? इसीलिए मुझे घर पर जाना योग्य नहीं है। क्योंकि संसार में बाह्य शत्रुओं का भय बना रहता है इसलिये वे छोड़े जा सकते हैं परन्तु घर का पुरुष यदि शत्रु हो जाय तो बहुत बुरा होता है। (फिर उसमें बन्धुता का भाव नहीं रहता और फिर उसका परिणाम भी यही होता है कि) जिस प्रकार कषायादि अभ्यंतर शत्रु सहसा नहीं छोड़े जा सकते उसी तरह उन लोगों का सम्बन्ध छूटना मुश्किल हो जाता है।

इस प्रकार अपने शुद्ध मन में विचार कर धन्यकुमार वहाँ से दूसरे देश की ओर चल दिया। चलते-चलते उसने किसी खेत में एक किसान को हल हांकते हुये देखा और विचारा कि देखो! मैंने अपनी लीला से कितनी कला कौशल विद्यायें सीखी हैं, परन्तु यह तो कोई अपूर्व ही विद्या मालूम पड़ती है। इतना विचार कर किसान के पास गया और आश्चर्य से उसकी ओर अवलोकन करता हुआ वहीं पर बैठ गया ॥१८॥

कृषक नाना प्रकार के अलंकारों से भूषित इसका रूपातिशय देखकर बहुत आश्चर्यान्वित हुआ और धन्यकुमार से बोला ॥२९॥ हे स्वामिन ! मैं कुटुम्बी हूँ, कुछ शुद्ध दही और भात लाया हूँ, मुझ पर अनुग्रह पूर्वक आप भोजन करें ॥३०॥

हे चतुर! भोजन करके मुझे और मेरी प्रार्थना को सफल करो। कृषक की प्रार्थना सुनकर धन्यकुमार ने उससे कहा यह बात मुझे स्वीकार है ॥३१॥

धन्यकुमार की स्वीकारता से प्रफुल्लित होकर कुटुम्बी उसे हल के पास बिठाकर आप पत्तों का पात्र बनाने के लिये पत्र लेने गया ॥३३॥

कृषक के चले जाने पर धन्यकुमार मुट्ठी से हल पकड़कर अपनी इच्छानुसार सहर्ष कौतुक से बैलों को चलाने लगा ॥३४॥

उस समय हल के अग्रभाग से पृथ्वी का विदारण होते ही उसे सुवर्ण से भरा हुआ तांबे का बड़ा भारी एक कलश दीख पड़ा ॥३५॥ उसे देखकर धन्यकुमार हा! मेरे इस अपूर्व विज्ञानाभ्यास से पूरा पड़े ॥३६॥ यदि कुटुम्बी यह प्रचुर धन देखेगा तो प्रगटपने वह भी भाईयों के समान मेरे साथ बरताव करेगा ॥३७॥

इस प्रकार विचार करके द्रव्य के भय से डर कर धन्य कुमार कलश को उसी तरह रखकर और मिट्टी से उसे ढककर बैठ गया ॥३८॥

इतने में कृषक भी पत्ते लाया और खड्डे में रखे हुये निर्मल जल का भरा हुआ कलश तथा दही भात निकालकर जल से धन्यकुमार के चरण कमल तथा पत्ते धोकर पत्तों के भाजन में भोजन करने के लिये उसे बिठाया ॥३९-४०॥

धन्यकुमार ने कृषक की प्रार्थना के अनुसार भोजन किया और बाद में उसने राजगृह जाने का सुगम मार्ग पूछ कर उसी रास्ते से अपनी इच्छा के अनुसार चला गया ॥४१॥

धन्यकुमार के जाने के बाद जब कृषक फिर हल चलाने लगा तब उसे वही धन दिख पड़ा। द्रव्य देखकर वह आश्चर्य के साथ विचारने लगा ॥४२॥ अहो ! इस पुण्यशाली के शुभोदय से यह द्रव्य निकला है इसलिये मेरे स्वीकार करने योग्य नहीं है ॥४३-४४॥

यही कारण है कि जो मूर्ख लोग लोभ से दूसरों का धन ले लेते हैं वे पाप के उदय से अपनी लक्ष्मी का भी साथ में नाश कर जन्म-२ में दरिद्री होते हैं ॥४५॥

इस प्रकार विचार कर दूसरों के धन में निस्पृह कुटुम्बी वह धन धन्यकुमार को देने के लिये उसके पीछे-२ जल्दी जाने लगा ॥४६॥ धन्यकुमार दूर से बुलाने वाले कुटम्बी को आता हुआ देखकर एक वृक्ष के नीचे सुखपूर्वक बैठ गया ॥४७॥

इतने में कुटुम्बी धन्यकुमार के पास आकर तथा उसे नमस्कार करके बोला - हे नाथ! अपना धन छोड़कर इस तरह इच्छा रहित क्यों चले आये ? ॥४८॥ कुटुम्बी के वचन सुनकर धन्यकुमार बोला - भाई! मैं क्या द्रव्य साथ में लेकर यहाँ आया था ? नहीं! किंतु उल्टा तुम्हीं ने तो मुझे दही तथा भात का भोजन कराया है फिर यह धन मेरा कहाँ से आया ? इसके उत्तर में अत्यन्त निर्लोभी और चतुर कुटुम्बी कहने लगा ॥४९॥

कुमार! मेरे वचन सुनिये - पहले हमारे पितामह तथा पिता यह खेत अपने पुत्रों के साथ-२ जोता करते थे तथा मैं भी हल

चलाता था, परन्तु कभी धन नहीं निकला और तुम्हारे आने पर आज शुभोदय से यह धन निकला है इसलिये निश्चय से यह धन तुम्हारा है क्योंकि हम सरीखे मन्द भाग्यों के लिये ऐसी सम्पत्ति कहाँ ? ॥५०-५२॥

कुटुम्बी के इस प्रकार वचन सुनकर धन्यकुमार बोला - अस्तु, यह मेरा ही धन है। मैंने तुम्हारे लिये दिया, तुम प्रयत्नपूर्वक पुण्योपार्जन तथा सुख के लिये इसका उपभोग करो। विभो! आपका मेरे ऊपर बड़ा भारी अनुग्रह है। इस प्रकार धन्यकुमार से कहकर कुटुम्बी फिर उसे मस्तक से प्रणाम कर यों कहने लगा ॥५३॥

हे नाथ! मैं कुटुम्बी ग्राम में रहता हूँ और मेरा नाम भी कुटुम्बी है। यदि किसी समय मेरे योग्य कोई कार्य हो तो आप शीघ्र ही मुझे सूचना करना। यों प्रार्थना पुरस्सर पुनः नमस्कार करके चला गया ॥५५॥

उधर धन्यकुमार भी रवाना हुआ सो उसे रास्ते में जाते वक्त पूर्वोपार्जित शुभोदय से मनोहर तथा निर्जन्तु किसी शुद्ध स्थान में बैठे हुये अवधिज्ञान से युक्त, निरन्तर धर्मोपदेश देने वाले, तीन जगत के जीवों का हित करने वाले और गुणों के समुद्र मुनिराज दीख पड़े ॥५६-५७॥

धन्यकुमार उनके दर्शन से हृदय में बहुत आनन्दित होकर उनके समीप गया। मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा दी और हाथ

जोड़कर देवतार्च्य उनके चरणों की अभिवन्दना की। तथा धर्म प्राप्ति के लिये उनके पास हर्षपूर्वक बैठ गया ॥५९-६०॥

मुनिराज भी उसे धर्म वृद्धि देकर उसकी शुभाशीर्वाद से प्रशंसा की और इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे - कुमार! जिस धर्म के प्रभाव से पद-पद में तुम्हें खजाना मिलता है, बड़ा भारी लाभ होता है, सर्व जगह मान्यता होती है, जो इस लोक तथा परलोक में हित करने वाला है, स्वर्ग सुख तथा शिवसुख का आधार है और जिनेश्वर, चक्रवर्ती तथा इन्द्रपद की सम्पत्ति का देने वाला है उसी धर्म का तुम्हें सेवन करना चाहिये ॥६३॥

क्योंकि धर्म के फल से धर्मात्माओं को तीन जगत की लक्ष्मीजन्य सुख, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चार पुरुषार्थ और उत्तम-२ पद की प्राप्ति होती है ॥६४॥ उस धर्म को जिन भगवान ने मुनि-धर्म तथा गृहस्थ धर्म इस प्रकार दो भेद रूप कहा है। उसमें मुनिधर्म सम्पूर्णता से होता है और गृहस्थ धर्म एक देश रूप दयामय है। धीर मुनिराज मुनिधर्म के द्वारा उसी पर्याय से अनन्त सुखशाली मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥६६॥

अथवा सर्वार्थसिद्धि के सुख का उपभोग कर सर्वज्ञावस्था को प्राप्त होते हैं। वे बड़ा भारी चक्रवर्ती पद पाते हैं अथवा चरम शरीर होकर उत्तम-२ तपश्चरण के द्वारा क्रम से मोक्ष चले जाते हैं ॥६७-६८॥ और गृहस्थ धर्म के द्वारा बुद्धिमान पुरुष सर्व ऋद्धियों के समूह का आश्रय भूत अच्युत स्वर्ग पर्यन्त स्वर्ग

में वा सत्पुरुषों के द्वारा सेवनीय तथा सम्पत्ति के आकर अर्चनीय उत्तम कुल में अवतार लेते हैं और वहाँ सुख भोग कर अनुक्रम से तपश्चरण द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष चले जाते हैं। ||६९-७०||

हे चतुर! इन दोनों धर्मों का मूल कारण, चन्द्रमा की तरह निर्मल, निःशंकादि आठ गुणों से युक्त शंकादि पच्चीस मल रहित, जिन भगवान तथा इन्द्रादि की सम्पत्ति का कारण, उत्तम-२ सुख का आकर, सम्यग्दृष्टि पुरुषों के साथ जाने वाले शुद्ध सम्यक्त्व को समझो। वीतराग भगवान को छोड़ कर सुखोपभोग तथा मोक्ष के कारण त्रिभुवन अर्चनीय और कोई देव नहीं हैं, न हुये तथा न होंगे ||७३|| जिन भगवान के कहे अहिंसा धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म सब ऋद्धि तथा सुख के कारण और सत्य नहीं हैं ||७४||

समस्त परिग्रह रहित निर्ग्रन्थ गुरु से बड़े सत्पुरुषों के सत्कार करने योग्य तथा स्वर्ग मोक्ष के मार्ग का उपदेश करने वाले और गुरु नहीं है ||७५|| सर्वज्ञ भगवान के कहे हुये सात तत्त्वों से बढ़कर सत्य तथा सम्यग्ज्ञान के कारण और तत्त्व इस संसार में नहीं हैं ||७६||

उत्तम पात्रदान छोड़ कर भोग तथा सुख का देने वाला और दान नहीं है तथा बारह प्रकार तप छोड़कर कर्मों को नाश करने वाला और तप नहीं है ||७७||

इस प्रकार जिन भगवान के कथन में जो बुद्धिमान पुरुषों का निश्चय करता है तथा श्रद्धा और रुचि का रखना है, ये सब दर्शन रूप कल्पवृक्ष के बीज हैं। क्योंकि संसार में मनोभिलषित सुख का देने वाला, तीन जगत के स्वामियों की तथा जिन भगवान की सम्पत्ति का कारण यही सम्यक्त्व है। ऐसा समझ कर आठ गुण युक्त, चन्द्र की कान्ति समान शुद्ध तथा पच्चीस दोष रहित सम्यग्दर्शन की शुद्धि तुम धारण करो ।।७९-८०।।

तथा कहे हुये देव पूजादि छह कर्म धर्म की सम्प्राप्ति के लिये सदैव आचरण करो ।।८१।। जिन पूजन, गुरुओं की सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप तथा दान ये गृहस्थों के नित्य करने योग्य छह कर्म पुण्य के कारण हैं ।।८२।। भक्तिपूर्वक जिन मंदिर तथा जिन प्रतिमा निर्माण कराकर अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम-२ तथा मनोहर आठ प्रकार पूजन द्रव्य से प्रतिदिन जो जिन प्रतिमाओं की पूजा की जाती है, उसे बुद्धिमान पुरुष सम्पूर्ण अभ्युदय की देने वाली कहते हैं ।।८४।।

यही कारण है कि जिन भगवान की पूजन से सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ प्राप्त होती है, विघ्न समूह तथा गृहारम्भ में होने वाले पाप का नाश होता है ।।८५।।

जो गृहस्थ उत्तम पात्र सद्गुरुओं की प्रतिदिन अज्ञान तथा मोह के नाश करने वाली और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र की देने वाली सेवा, भक्ति, सुश्रुषा तथा सदा आज्ञा का पालन अपने धर्म लाभ के लिये किया करते हैं उसे गुरूपास्ति

(गुरुसेवा) कहते हैं ॥८७॥ जो बुद्धिमान पुरुष मोक्ष की प्राप्ति के लिये सिद्धांत का अभ्यास करते हैं वह तथा सामायिक नमस्कार और ज्ञानाभ्यास आदि जितने पावन कर्म हैं ये सब स्वाध्याय कहे जाते हैं। महर्षि लोग स्वाध्याय को त्रिभुवनवर्त्ति पदार्थों के देखने के लिये प्रदीप कहते हैं क्योंकि इसके द्वारा प्रचुर अज्ञानान्धकार का नाश होता है तथा यह पंचेन्द्रिय रूप शत्रुओं का घातक है ॥८८-८९॥

यही हेतु है कि इसी ज्ञान से - सत्पुरुष हेयोपादेय का, भले बुरे का, देव शास्त्र और गुरु की परीक्षा का, धर्म के स्वरूप मोक्षमार्ग का, खोटे मार्ग का तथा झूठे सच्चे धर्म का स्वरूप जानने लगते हैं और जो अज्ञानी होते हैं वे जैसे जन्मान्ध पुरुष हाथी का ठीक-२ स्वरूप नहीं जान सकते वैसे ही कभी कुछ भी नहीं जान पाते हैं ॥९०-९१॥

इस प्रकार स्वाध्याय का फल समझकर बुद्धिमान पुरुषों को सिद्धान्त शास्त्र में प्रवेश के प्रतिबन्धक अज्ञान का नाश करने के लिये और ज्ञान की सम्प्राप्ति के लिये शिवसुख का साधन स्वाध्याय करना चाहिये ॥९२॥

बारह प्रकार उत्तम व्रतों के पालन करने को, पंचेन्द्रिय रूप शत्रुओं के वश करने को, तथा हृदय में प्राणियों की दया करने को गणधर भगवान संयम कहते हैं। यह संयम निरन्तर पुण्य की सम्प्राप्ति करने वाला है और पापास्रव का निरोधक है। ॥९३-९४॥

अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिन अथवा और व्रतादि में नियमपूर्वक उपवास करने को दूसरा कायक्लेश तप कहते हैं ॥९५॥

बुद्धिमान पुरुष बारह प्रकार तपों के द्वारा जो तप आचरण करते हैं वह सम्पूर्ण तप, कर्म के भस्म करने के लिये अग्नि के समान है ॥९६॥ इसके द्वारा गृहस्थों के गृह सम्बन्धी आरंभ से होने वाला पाप नाश होता है तथा गुणों के साथ ही साथ धर्म रूप कल्पवृक्ष वृद्धिंगत होता है ॥९७॥

इस प्रकार समझकर पर्वतिथि में बुद्धिमानों को उपवासादि पूर्वक निर्मल तप आचरण करना चाहिये और फिर उसे प्राणों के नाश होने पर भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥९८॥ प्रतिदिन दान देने के लिये अपने गृह द्वार पर खड़े होकर निरीक्षण करना और उत्तम पात्र मिलने पर उन्हें दान देना चाहिये। क्योंकि दान सुख का आकर है, अपना तथा दूसरे का हित करने वाला है, धर्म तथा सुख का देने वाला है, गृहारम्भ से होने वाले पाप का नाश करने वाला है और भोग भूमि की विभूति को प्राप्त कराने वाला है ॥९९-१००॥

इन छह कर्मों के द्वारा गृहस्थों को निरन्तर उत्तम धर्म की प्राप्ति होती रहती है तथा गृहारम्भ से होने वाले पाप कर्म का नाश होता है ॥१०१॥

हे कुमार! इस प्रकार समझकर तुम्हें स्वर्ग सुख के देने वाले

पावन, गृहस्थों के छह कर्म नित्य करने चाहिये। क्योंकि इन्हीं के द्वारा परम्परा मोक्ष सुख भी मिल सकेगा। और देखो! पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये बारह व्रत भी गृहस्थ धर्म में पाले जाते हैं। गृहस्थ धर्म भी पाप का नाश करने वाला और स्वर्ग सुख का प्रधान कारण है। इसलिये कुमार! धर्म की प्राप्ति के लिये तुम्हें श्रावकों के उत्तम व्रत धारण करने चाहिये। तुम इनके द्वारा उत्तम सुख तथा परम्परा मोक्ष भी प्राप्त कर सकोगे। सदैव सद्धर्म का सम्पादन करो, धर्म ही का आश्रय लेओ क्योंकि धर्म गुणों का खजाना है। धर्म के अनुसार उत्तम मार्ग पर चलो, उसे प्रतिदिन अभिवन्दना करो, धर्म से तुम्हें सब वस्तुओं की अपाप सिद्धि होगी। देखो धर्म का मूल दया है उसे कभी मत भूलो, धर्म में सदा निश्चल चित्त रहो यही उत्तम धर्म तुम्हारी सदा रक्षा करेगा।

तुम जानते हो धर्म अनन्त सुख का समुद्र है और दुःख का नाश करने वाला है, बुद्धिमान लोग सदा धर्म का उपार्जन करते हैं, धर्म के द्वारा जल्दी ही सब गुण मिल जाते हैं, धर्म को मैं भी नमस्कार करता हूँ। धर्म को छोड़कर और कोई शिव सुख का देने वाला नहीं कहा जा सकता। धर्म का मूल क्षमा है, धर्म में अपने चित्त को एकाग्र करता हूँ, हे धर्म! तू मेरी रक्षा कर।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में
धन्यकुमार के विघ्नों की शान्ति तथा धर्म श्रवण नामक
द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ ॥२॥

# तृतीय अधिकार

**विश्वविघ्नहरान् वन्दे, पञ्च सत्परमेष्ठिनः ।**
**विश्वश्रीधर्मकर्तृंश्च, विश्वबन्धूनगुणार्णवान् ॥**

धन्यकुमार मुनिराज के द्वारा धर्मोपदेश सुन कर बहुत खुशी हुआ और अपने योग्य व्रत नियमादि श्रद्धा पूर्वक ग्रहण किये । बाद में मुनिराज को सभक्ति अभिवन्दना कर हाथ जोड़ कर पूछा-

नाथ! आप तीन जगत के जीवों का हित करने वाले हैं । आपसे मुझे कुछ पूछना है । वह यह कि क्या कारण है जिससे मेरे भाई लोग तो मुझसे द्वेष करते हैं और फिर किस पुण्य से माता प्रेम करती है ? तथा पद-२ में मुझे बहुत सम्पत्ति मिलती है । क्या आप कृपा कर ये सब बातें मुझे कहेंगे ?

मुनिराज धन्यकुमार पर अनुग्रह कर उससे पूर्व जन्म की जीवनी सुनाने लगे - कुमार! जरा अपने चित्त को कहीं जाने न देना, मैं तुम्हें पूर्व जन्म की कथा कहता हूँ । क्योंकि उससे तुम्हारे हृदय में संसार से भय उत्पन्न होगा, धर्म में अभिरुचि होगी, पाप से डरोगे और दान व्रत नियमादि में उत्तम विचार होंगे । तुम्हारी कथा से सर्व-साधारण का भी उपकार हो सकेगा ।

भारतवर्ष - मगधदेश, उसके अन्तर्गत भोगावती नामकी नगरी थी । उसके स्वामी का नाम कामवृष्टि था । उसकी भार्या

मृष्टदाना थी। उनके घर में सुकृतपुण्य नामका एक नौकर था। जब मृष्टदाना गर्भवती हुई तब ही उसके पापोदय से कामवृष्टि मर गया। बाद में वह गर्भ जैसे-२ बढ़ने लगा तैसे-२ सब लोग गर्भ के प्रचण्ड पाप से धराशायी हुये।

पुत्र का जन्म होते ही मृष्टदाना की माता ने भी परलोक यात्रा की। धन धान्यादि सब वस्तुएँ नष्ट हो गईं। साथ ही साथ पुण्य कर्म भी नष्ट हुआ।

सच कहा है - जब अभागा कुपुत्र गर्भ में आता है तब कुटुम्ब, धन, सुख और पुण्य सभी नष्ट हो जाते हैं, और घर में दरिद्रता का वास हो जाता है। पापी पुत्र का पैदा होना सर्वथा बुरा है। समझो! पुत्र, कलत्र आदि जितनी वस्तुएँ जो दुःख की कारण होती हैं वह सब पाप का फल है। इसलिये जो बुद्धिमान हैं उन्हें अनिष्ट संयोग का प्रधान कारण पाप प्राण जाने पर भी नहीं करना चाहिये। प्रत्युत सदा धर्म का उपार्जन करना उचित है।

देखो! इस बालक ने पाप कर्म के सिवाय कभी पुण्य कर्म नहीं किया यही कारण है जो आज इसकी यह दारुण दशा हुई। यही समझ मृष्टदानाने भी अपने अभागे पुत्र का नाम अकृत्य-पुण्य रखा। समस्त धन तो पहले ही नष्ट हो चुका था। जब बिचारी मृष्टदाना को पेट भरना तक मुश्किल हो गया तब वह कुछ उपाय न देखकर लाचार होकर दूसरे के घर का पीसना पीसकर बहुत दुःख के साथ अभागे पुत्र का पालन पोषण करने लगी।

उधर कामवृष्टि के मर जाने के बाद पुण्योदय से उसका नौकर वही सुकृतपुण्य भोगावती का मालिक हो गया था। उस अवसर में धन्यकुमार ने अवधिज्ञानी मुनिराज को नमस्कार कर पूछा - भगवन्! बालक ने पूर्व जन्म में ऐसा कौन सा पाप कर्म किया है और कैसे खोटे काम किये हैं जिससे आज इसे यह दशा देखनी पड़ी ?

मुनिराज उसकी कथा कहने लगे - जिसके सुनने मात्र से बुरे कामों के करने में भय होता है।

इसी देश में भूतिलक नामका सुन्दर नगर था। उसमें महाधनी धनपति वैश्य रहता था। धनपति बुद्धिमान, महादानी, व्रती और सदा शुभ कर्म करने वाला था।

एक दिन उसने निर्मल चित्त से विचारा कि लक्ष्मी पुण्य के उदय से होती है। मेरी समझ में उसका फल केवल पात्रदान होना चाहिये। परन्तु जो उत्तम पात्र हैं वे तो केवल आहार को छोड़कर और कुछ भी कभी नहीं लेते हैं, और न निर्ग्रंथ साधुओं को वस्त्र, धनादि दिये ही जा सकते हैं क्योंकि उनसे उनकी निर्ग्रन्थता में बाधा आती है।

इसलिये यदि बड़े-२ ऊंचे जिनालय बनवाये जावें, जिन भगवान की प्रतिमायें बनवाई जावें और उनकी प्रतिष्ठा करवाई जावे, तो अवश्य इन शुभ कर्मों के द्वारा लक्ष्मी सार्थक हो सकती है और कल्पलता की तरह इच्छित फल दे सकती है। क्योंकि देखो !

जिन मन्दिर में कितने जिन भगवान की पूजा से, कितने नमस्कार, स्तवन, दर्शन, गीत, नृत्य और वादित्र से, कितने अभिषेक से, कितने धर्मोपकरणादि के दान से, कितने उद्यापनादि से और कितने यात्रा करने से बड़े भारी पुण्य कर्म का उपार्जन करते हैं। उनमें योगिराज भी रहते हैं उनके द्वारा धर्म की प्रवृत्ति होती है और धर्म के द्वारा भव्य पुरुष स्वर्गादि सुख के अनुभोक्ता होते हैं इत्यादि नाना तरह के अच्छे-अच्छे कर्मों से गृहस्थ लोग जिन मंदिरों में पुण्य सम्पादन किया करते हैं।

इसलिये यदि यह कहा जाय कि धनी लोगों को लक्ष्मी का वास्तविक फल जिन मंदिर का निर्माण तथा उद्धार कराना छोड़कर और कुछ नहीं है तो कुछ बुरा नहीं कहा जा सकता क्योंकि सहस्रों वर्ष पर्यन्त उनमें जिन प्रतिमायें पूजी जाया करेंगी।

जो लोग प्रतिमायें बनवाते हैं उन्हें कितना पुण्य बन्ध होता होगा उसे कौन कह सकता है ? इसलिये धनी लोगों को जिन प्रतिमायें बनवानी चाहिये। उनके द्वारा वे स्वर्ग तथा शिव-सुख के भोगने वाले हो सकेंगे। ग्रन्थकार कहते हैं कि जो लोग जिन प्रतिष्ठा करवाते हैं उनके कितना पुण्य कर्मबन्ध होता है उसकी संख्या मैं नहीं जानता क्योंकि प्रतिष्ठा के द्वारा धर्म की वृद्धि होती है।

यही हेतु है कि प्रतिमा बनवाने वाले बहुत पुण्य कमाते हैं। कितने मिथ्यादृष्टि तो जिन प्रतिमा तथा प्रतिष्ठा करवाकर ही

जैसी होते हैं और तरह नहीं। तात्पर्य यह कि जिनप्रतिमा और जिनप्रतिष्ठा पुण्य की कारण हैं इसलिये धनिक लोग जिनालय क्यों न बनवावें ?

इसी विचार से धनपति सेठ ने बड़ा विशाल सुन्दर जिनालय निर्माण करवाया और सुवर्ण रत्नमयी जिन प्रतिमायें बनवाई। चारों संघ को बुलवाकर उन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा विधि के अनुसार बहुत धन लगाकर प्रतिष्ठा करवाई और जिनालय में देने के लिये सुवर्ण और रत्नमयी श्रृंगार, कलश प्रभृति धर्मोपकरण बनवाये।

उन रत्नमयी प्रतिमाओं की प्रसिद्धि सब जगह फैल गई। उसे सुनकर किसी दुर्व्यसनी चोर ने लोभ में आकर विचारा कि उस जिनालय की रक्षा के लिये बहुत रक्षक नियत हैं सो बिना साधु वेश धारण किये किसी तरह उसके भीतर नहीं जा सकुँगा।

इस प्रकार विचार कर वह मायावी लोभ के वश हो ब्रह्मचारी बन गया। कपटभाव से कायक्लेशादि तपश्चरण करने लगा और भोले लोगों में अपने गुणों की प्रशंसा करने लगा। ऐसे ही देश देशों में घूमता हुआ भूतिलकपुर में आ पहुँचा।

जब लोगों के मुख से ब्रह्मचारी की धनपति ने प्रशंसा सुनी तो उसी वक्त उसके पास गया और नमस्कार कर उसे अपने मन्दिर में लिवा लाया। कुटिलात्मा ब्रह्मचारी भी झूठे तपश्चरण से लोगों को अनुरक्त करके बगुले की तरह जिनालय में रहने लगा।

किसी दिन धनपति ने पापी ब्रह्मचारी से कहा - महाराज! मुझे व्यापारार्थ दूसरे देश जाना है इसलिये आपसे प्रार्थना है कि जब तक मैं पीछा न लौटूँ आप जिनालय की रक्षा करना।

ब्रह्मचारी ने यह कहकर टाल दिया कि हम यहाँ नहीं रहेंगे (सच है कि जो लोग अन्तरङ्ग के काले होते हैं उनकी भीतरी बातें कौन जान सकता है) ठीक यही हालत सरल स्वभावी धनपति की हुई। वह ब्रह्मचारी के भीतरी दिल की बात न जानकर उसके इन्कार करने पर और भी आग्रह करने लगा और किसी तरह उन्हें रक्षा का भार सौंपकर आप चला गया।

इधर मायावी ब्रह्मचारी का दाव लग गया सो उसने व्यसनों के द्वारा जिनालय के सब उपकरणों को तीन तेरह कर दिये। परन्तु यह पाप कब तक छिप सकता था सो ब्रह्मचारी के शरीर में कोढ़ फूट निकला, सारा शरीर दुर्गन्धमय हो गया, उसके द्वारा बड़ा ही दुःख होने लगा।

सच कहा है - अधिक पाप का अथवा पुण्य का फल प्रायः उसी वक्त उदय हो आता है। पाप का फल बहुत बुरा होता है और पुण्य का अच्छा होता है। पापियों को इसी भव में नाना तरह के रोगादि तथा परलोक में नरक दुःख भोगने पड़ते हैं और पुण्यात्माओं की सब प्रशंसा करते हैं, बड़ी ही प्रतिष्ठा होती है, जगत में यश फैलता है और परभव में भी उत्तमगति मिलती है।

जो लोग देव गुरु और शास्त्र की पूजन करते हैं वे स्वर्ग में

जाते हैं और जो पापी लोग निर्माल्य खाने वाले हैं वे नरक में जाते हैं। उसके वंश का सर्वनाश हो जाता है, धन चला जाता है, नाना तरह के दारुण रोग भोगने पड़ते हैं। इतने पर भी छुटकारा न होकर अन्त में उनके लिये नरक द्वार तैयार रहता है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि - हलाहल विष खा लेना बहुत ही अच्छा है फिर उससे उसी वक्त भले ही प्राण चले जाये परन्तु निर्माल्य खाना अच्छा नहीं। कारण इसके द्वारा अनंत भव बिगड़ जाते हैं।

इस बात को ध्यान में रखकर बुद्धिमानों को कभी देव, गुरु, शास्त्र का निर्माल्य नहीं लेना चाहिये। किन्तु जैसे विष का उपयोग बुरा है उसी तरह निर्माल्य भी बुरा समझ कर छोड़ देना चाहिये।

ब्रह्मचारी उसी भीषण अवस्था में वहीं रहा करता था। इस वक्त उसकी और भी दशा बिगड़ गई थी। सब अङ्ग प्रत्यङ्ग कोढ़ के मारे गले जा रहे थे। देखने में बड़ी घृणा पैदा होती थी, आकृति भयानक हो गई थी, हरवक्त रौद्र भाव बने रहते थे। थोड़े में यों कहो कि वह खासे दुःख समुद्र से डूबा हुआ था।

इतने में धनपति भी निर्विघ्न विदेश यात्रा से लौट आया। उसके देखते ही ब्रह्मचारी को बड़ा क्रोध आया। उसके मुंह से यही आह निकली कि मरा भी नहीं जो पीछा चला आया ?

इतना कहकर सेठ के ऊपर दारुण रौद्र ध्यान करने से उसकी

वेदना और भी बढ़ गई और इसी दशा में बड़े कष्ट से मर गया। मरकर निर्माल्य भक्षण के पाप से सातवें नरक में गया। वहाँ अत्यन्त दुर्गन्धित उपपाद प्रदेश में ऊपर पांव तथा नीचे मुख होकर उत्पन्न हुआ और मुहूर्त मात्र में हुडंक संस्थान तथा कुत्सित शरीर धारण कर पृथ्वी पर गिरा। गिरते ही पृथ्वी के आघात से पांच सौ योजन उछला और पीछा गिरा। शरीर के खण्ड-२ हो गये। जैसे वृक्ष से गिरकर पत्ता वायु वेग से पृथ्वी पर लौटा करता है ठीक वही हालत इसकी नरक में थी। नरक बड़ा ही भयानक होता है, उसमें दुर्गंध का अन्त नहीं, एक साथ हजार बिछूओं के काटे की तरह दुःख होता है, चारों ओर वन की तरह कांटों से संकीर्ण होता है।

जब वह यहाँ वहाँ देखता है तो इसे भयानक लाल -२ नेत्र किये हुये और दारुण कर्म करने वाले नारकी लोग दीख पड़े और ठीक ऐसी ही सर्व दुःखों की स्थान, अस्पर्शनीय, अतिभयानक, नरकों की भूमि दीख पड़ी। तब यह विचारने लगा -

मैं कौन हूँ ? यहाँ क्यों कर कहाँ से आया ? यह स्थान इतना भीषण क्यों है ? और ये भयंकर लोग कौन है ? विचारते ही इसे विभंगावधि उत्पन्न हो गया। उसके द्वारा अपने को भयंकर नरक में गिरा हुआ समझकर पूर्व जन्म के बुरे कर्मों को विचारने लगा -

हा ! पांच इन्द्रियों के विषय में आसक्त होकर मुझ पापी ने सात व्यसन सेवन किए थे, अभक्ष्य मधु मांसादि खाये थे, स्वच्छन्द होकर मदिरा पान किया था, चोरी और मायाचारादि के द्वारा दूसरों का धन लूटा था, दूसरों की स्त्रियों से बलात्कार किया था, जीवों की हिंसा की थी, झूठे और कडुवे वचन बोले थे, जिनालय के उपकरणादि का हरण किया था, आर्त, रौद्र, दुर्लेश्या, बुरी चेष्टा और दूसरों को दुःख देना आदि दुराचारों से निरन्तर पाप ही पाप उपार्जन किया था उसी महापाप से यहाँ यह दारुण दुःख भोगना पड़ा है।

यह दुःख कितना दुस्सह और दुस्तर है जिसका संसार में कोई उपमान नहीं दिखता। पाप तो मैंने बहुत ही कमाया और पुण्य के कारण न तो कुछ व्रत नियमादि ही पालन किये, न नमस्कार मंत्र का ध्यान किया, न जिन पूजन की, न गुरुओं के चरणों की सेवा की, न इंद्रियाँ वश में की, न उत्तम-पात्रों को दान दिया और न ध्यान ही किया अथवा थोड़े में यों कहो कि शुभ कर्मों के द्वारा धर्म का लेश भी सम्पादन नहीं किया जो उत्तम गति के सुख का कारण और दुर्गति से रक्षा करने वाला है। यही कारण है कि - मुझे दुःख-प्रचुर और महानिंद्य दुःख रूपी समुद्र के बीच में जन्म लेना पड़ा। हा! मैं पाप शत्रु के द्वारा पूर्णरूप से जकड़ा हुआ हूँ। मैं कहाँ जाऊँ ? और किसे जाकर अपनी दुःख कहानी सुनाऊँ ?

इस समय पाप का बड़ा ही दारुण उदय होने से मुझे तो कोई रक्षक भी नहीं दीख पड़ता। हा! इस घोर दुःख समुद्र से क्यों कर मैं पार हो सकूँगा ? हा! दैव (कर्म) ने मेरे शिर पर बड़ी भारी यातना का पहाड़ गिरा दिया।

यह तो इधर अपने प्रकृत कर्मों की प्रायश्चित्त वह्नि से भीतर बाहर जल ही रहा था कि इतनें में कितने नारकियों ने क्रोधित होकर इसके शरीर के अंशों को मुद्गार आदि शस्त्रों से खण्ड-२ कर दिये, कितने निर्दयी पापियों ने यह कह कर कि देखो ये वे ही नेत्र हैं न ? जिससे बुरी तरह दूसरे की ओर देखा था, झट से नेत्र उखाड़ लिये, कितने दुर्बुद्धियों ने हृदय में उत्पन्न हुये पाप विकार से उसके उदर को फाड़कर सब आतें तोड़ डालीं, कितनों ने कृकच (करोत) के द्वारा उसके शरीर को चीर डाला, कितने ही अधम शरीर के तिल बराबर खण्ड-२ करके और अधिक दुःख देने लगे।

नारकियों के शरीर के टुकड़े पारे की तरह मिल जाते हैं क्योंकि जब तक आयु की स्थिति का नाश न होगा तब तक उनकी मृत्यु न होकर ऐसी ही अवस्था होती रहेगी।

बिचारे ब्रह्मचारी के जीव का एक ओर तो वेदना से छुटकारा हुआ ही नहीं था कि इतने में कितने नारकियों ने आकर और प्रचुर दुःख देने की इच्छा से वहाँ से उठाकर उसे गरम तैल की कढ़ाई में डाल दिया सारा शरीर देखते-देखते जल गया।

उसकी शांति के लिये वहाँ से निकलकर वैतरनी नदी के

दुर्गन्धित जल में डुबकी लगाई परंतु वहाँ भी उसे शांति न मिली। क्योंकि वह जल मांस तथा खून की तरह अत्यन्त ही ग्लानिकारक होता है सो उससे सन्ताप और भी अधिक बढ़ गया।

वहाँ भी जब देखा कि शांति नहीं है तब इस इच्छा से कि वन में जरूर ही कुछ न कुछ आराम मिलेगा वहाँ से चलकर वन में पहुँचा। और किसी वृक्ष के नीचे बैठना ही चाहता था कि इतने में प्रचण्ड वायु चलने से खड्ग की तरह तीक्ष्ण पत्र ऊपर से गिरे। गिरते ही शरीर खण्ड-२ हो गया।

वहाँ से भी उसी दशा में दूसरे वन में गया सो वहाँ वैक्रियक सिंह व्याघ्रादि हिंस्र जीव खाने लगे। उसी वक्त कितने नारकी लोग और भी आकर उसे यह इशारा करके कि देख! पहले से बहुतसी परस्त्री की जीवनी खराब की थी, आ और अब भी उस सुख का अनुभव कर, ऐसा कहकर बलात् जलती हुई लोह की पुतली से आलिङ्गन करा देते थे।

कितने संडासी के द्वारा उसके मुख को जबरदस्ती से चीर कर मद्य की तरह गरम तांबा पिलाते थे। जितने दुःसह तथा सब दुःख के कारण रोग हैं वे सब नारकियों के शरीर में स्वभाव ही से हो जाते हैं।

उन्हें प्यास इतनी अधिक सताती है कि यदि सारा समुद्र पी जाय तब भी वह न मिटे इतने पर भी जल की एक बूंद तक नहीं मिलती।

संसार मात्र के अन्न से भी न मिटने वाली भूख हृदय जला देती है परंतु तिल मात्र तक अन्न खाने को नहीं मिलता। वहाँ शीत इतनी है कि एक लाख योजन मन का लोह पिंड डालते ही पानी हो जाता है, और इतनी ही अधिक गरमी रहती है।

इस प्रकार नरक में परस्पर में दिये हुये और मन वचन काय की बुरी वृत्ति से उपार्जन किये हुये महा पाप के उदय से शीत उष्ण क्षुधा तृषादि की भीषण यातनाओं का उस ब्रह्मचारी के जीव ने निरन्तर अनुभव किया। वाणी में भी उतनी शक्ति नहीं है जो नारकीय पीड़ा का वर्णन कर सके।

उस पापी ने तैंतीस सागर पर्यन्त वहीं अनेक तरह के दुःख भोगे, जहाँ दुःख समुद्र में डूबे हुये नारकियों को निमिष मात्र भी सुख नहीं होता है।

जब उसकी नरक स्थिति पूर्ण हुई तब वहाँ से निकल कर पापोदय से स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य हुआ। वहाँ भी उसने बहुत दिनों तक जीवों के भक्षण से फिर भी सप्तम नरक का पाप उत्पन्न किया। सो आयु पूर्ण होते ही पीछे उसी नरक में गया जिसके दुःखों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

वहाँ पहले की तरह दुःखानुभव कर निकला और भव समुद्र में सब दुःखों की कारण त्रस तथा स्थावर योनियों में चिरकाल भ्रमण कर यही अकृतपुण्य हुआ है।

देखो! इस अकृतपुण्य ने पूर्व जन्म में मायाचार के द्वारा पाप उपार्जन किया था उसी के भीषण फल से इसे दारुण नरक यातना भोगनी पड़ी है। यही विचार कर बुद्धिमानों को पाप कर्म से आत्मा की रक्षा करनी चाहिये - और व्रत संयमादिक ग्रहण करने चाहिये जिससे सुख मिल सके यही कहने का सार है।

धर्म और अधर्म के निरूपण करने वाले जिनेन्द्र, और उसके फल को प्राप्त हुए निरुपम सिद्ध भगवान, पावन धर्म का उपदेश देने वाले आचार्य और उपाध्याय तथा साधु ये सब मिलकर मुझे अपने-२ गुणों का लाभ करावें क्योंकि त्रिभुवन के राजा और महाराजा इन्हीं की स्तुति करते हैं इसलिये ये ही स्तवन के पात्र हैं।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में
अकृतपुण्य के भवान्तर का वर्णन नामक
तृतीय अधिकार समाप्त हुआ ॥३॥

# चतुर्थ अधिकार

## अकृतपुण्य के दान का वर्णन

**जिनान्धर्माधिपान्वन्दे सिद्धान्धर्मफलाङ्कितान् ।**
**सूरींश्च पाठकान्साधून्धर्मान्धर्मप्रवर्त्तकान् ॥**

एक दिन दरिद्री और दीन अकृतपुण्य सुकृतपुण्य के चने के खेत पर चला गया और नौकर की तरह सुकृतपुण्य से बोला -

सुकृतपुण्य! देखो ये और लोग जो चने उखाड़ रहे हैं मैं भी इनकी तरह यदि चने उखाड़ूं तो क्या मुझे कुछ देओगे ?

उसके कातर वचन सुनकर सुकृतपुण्य विचारने लगा - हा! इस संसार में मनुष्यों के कर्म की विचित्रता! जो कभी स्वामी होते हैं वे तो नौकर हो जाते हैं और जो नौकर होते हैं वे स्वामी हो जाते हैं।

हाय! इसके पिता के प्रसाद से मेरी यह दशा हुई है जो मैं धनिक और गांव का स्वामी हो गया और यह भी उसी का पुत्र है जिसकी आज यह दशा! जो कर्मों का मारा हुआ मुझसे भी याचना कर रहा है।

इस दुष्ट देव को धिक्कार है जो समय मात्र में उल्टे का सीधा और सीधे का उल्टा कर देता है। अथवा यों कह दो कि पाप के उदय से धनी दरिद्री हो जाते हैं और पुण्य के उदय से निर्धन धनी हो जाते हैं।

यही विचार कर जो निर्धन हैं उन्हें तो धन लाभ के लिये पुण्य उपार्जन करना चाहिये और जो धनिक हैं उन्हें विभव वृद्धि के लिये सब पाप कर्म छोड़ने चाहिये।

सुकृतपुण्य ने उसकी दीन दशा देखकर उसी वक्त कितने ही धन से भरे हुए सुवर्ण के कलश उसे दिये। परन्तु अकृतपुण्य का पाप कर्म इतना प्रचण्ड था जो हाथ में धरते ही वे अंगार की तरह जलाने लगे। उन्हें देखकर अकृतपुण्य बोला -

क्यों भाई! सबके लिए तो तू चने दे रहा है और मेरे लिए ये अङ्गार! ऐसा क्यों ? तब सुकृतपुण्य ने समझ लिया कि अभी इसके दारुण पाप का उदय है। क्या किया जाए ?

भाई! मेरे अङ्गार तू मुझे ही देदे और जितने चने तू ले जा सकता है उतने गठरी बांधकर खेत से लेजा। उसके कहने के अनुसार अकृतपुण्य जितने चने अपने से उठा सके उतने सिर पर रखकर घर चला गया।

चने देखकर उसकी माता ने कहा - ये चने तू कहाँ से लाया है ? उत्तर में अकृतपुण्यने कहा - माता! मैं सुकृतपुण्य के खेत पर गया था वहीं से चने लाया हूँ। सुनकर माता बहुत ही दुःखी हुई और कहने लगी -

हाय! जो पहले मेरा नौकर था आज पाप के उदय से मेरा पुत्र उसी का नौकर हुआ। जो बुद्धिमान हैं उन्हें जहाँ पूर्व अवस्था में नाना तरह के ऐश आराम किये गये हैं वहीं फिर नौकर की तरह रहना उचित नहीं है ठीक यही हालत अभी मेरी है। धन

प्रभुत्व सब तो नष्ट हो चुका और दरिद्रता सामने खड़ी है। इसलिये कहीं अन्यत्र ही जाना चाहिये। फिर वहाँ दुःख हो अथवा सुख! क्योंकि पाप और पुण्य का फल बिना भोगे नहीं छूटता है।

यही विचार कर अकृतपुण्य की माता ने चने का पाथेय बनाया और पुत्र को साथ लेकर कहीं अन्यत्र जाने के विचार से प्रयाण यात्रा कर दी सो चलती-चलती अवन्ती देश के अन्तर्गत सीसवाक ग्राम में पहुँची और पुत्र का मार्गश्रम दूर करने के लिये ग्राम के स्वामी के गृहाङ्गण में बैठ गई।

स्वामी का नाम था बलभद्र। उसे देखकर बलभद्र ने पूछा - माता! तुम कहाँ से आई हो ? और यहाँ से किसलिये कहाँ जाओगी ? इतना पूछने पर भी बिचारी लज्जा के मारे कुछ उत्तर न दे सकी तब बलभद्र ने फिर आग्रह के साथ पूछा तब बोली-

भाई! पाप के उदय से जीवों को बहुधा दुःख ही उठाने पड़ते हैं। मैं दैवकी मारी मगधदेश से यहाँ आ निकली हूँ और वहीं जाऊँगी जहाँ मेरी जीविका हो सकेगी।

यह सुनकर बलभद्र बोला - यदि तेरी यह इच्छा है तो यहीं रह और मेरे घर में भोजन बनाया कर। और तेरा पुत्र मेरे गाय के बच्चों को वन में चरा लाया करेगा। मैं तुम्हारे लिये उचित वस्त्र, भोजन का प्रबंध कर दूंगा।

उसने बलभद्र के कहने को स्वीकार किया। बलभद्र ने उसके रहने के लिये अपने घर ही के पास एक छोटी-सी झोंपड़ी

बनवा दी। माता पुत्र वहीं पर रह कर उसकी नौकरी करने लगे और बलभद्र के द्वारा दिये हुए वस्त्र भोजनादि से अपना निर्वाह करने लगे।

बलभद्र के सात पुत्र थे। उनके प्रातःकाल खाने के लिये सदा खीर का भोजन बना करता था। सो उन्हें खीर खाते हुये देखकर अकृतपुण्य भी अपनी माता से रोज-'' खीर मांगने लगा।

माता ने उत्तर दिया - पुत्र! तू नहीं जानता कि - बिना पुण्य के ऐसा उत्तम खाना नहीं मिल सकता। तूने न तो पर भव में और न यहां कुछ पुण्य कमाया है, अब तू ही कह, मैं तुझे कहां से खीर का भोजन दे सकती हूँ ? देख! उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र, धन, धान्य और सुख ये सब धर्म के बिना कभी नहीं मिलते हैं।

इसी तरह उसे उसकी माता ने बहुत समझाया तो भी वह कर्त्तव्याकर्त्तव्य को न जान सका। इसीलिये प्रतिदिन वह खीर मांगा करता था और न मिलने पर रोने लगता था। उसे रोता हुआ देखकर बलभद्र के पापी पुत्र बिचारे को थप्पड़ों से मारा करते थे।

इसी तरह मारते-मारते एक दिन उसे कहीं अधिक चोट लग गई सो उसका मुंह सूझकर विकृत हो गया।

अकृतपुण्य की ऐसी दशा। देखकर बलभद्र ने उससे पूछा - क्यों यह मुख कैसे सूझ गया है ? उसने कहा - प्रभो! खाने को खीर मांगा करता था परन्तु था तो पाप का उदय, सो वह कैसे

मिल सकती थी ? उसके बदले में आपके पुत्रों ने मेरी यह दशा की है।

यह सुनकर बलभद्र को बड़ी ही दया आई सो उसने अकृतपुण्य की माता से कह दिया - तूं मेरे घर से दूध, घी, चावल, शक्कर अपने घर ले जाकर खीर बनाना और उसे पुत्र को खिलाकर उसकी अभिलाषा पूरी करना।

बलभद्र के कहे अनुसार वह चावल वगैरह अपने घर लाई और पुत्र से बोली -

पुत्र! आज मैं तुझे खीर खाने को दूंगी सो तूं घर पर जल्दी आ जाना। अकृतपुण्य माता से यह कहकर कि - जैसा तुम कहती हो वही करूंगा, गाय के बच्चों को लेकर खुशी के साथ वन में चला गया। उधर उसकी माता ने खीर बनाई। इतने में मध्याह्न होते-२ अकृतपुण्य भी घर पर आ गया। उसे वहीं बैठाकर और यह कहकर - ''पुत्र! यदि कोई साधु हमारे घर पर आ जावें तो यहां से जाने मत देना। उन्हें दान देकर बाद में अपन खावेंगे। दान पुण्य प्राप्ति का कारण है। देख! उत्तम पात्र को दान देने से हम लोगों को जनम-२ में ऐसा ही उत्तम आहार मिला करेगा और सब तरह का सुख भी मिलेगा।

उत्तम दान देने से ही गृहस्थाश्रम सार्थक होता है, दोनों लोक में यश फैलता है, पुण्यकर्म का बंध होता है। दानी लोगों को उत्तम सुख सम्पत्ति मिलती है। जिन लोगों के यहाँ उत्तम

पात्रों को दान नहीं दिया जाता है उनका गृहस्थाश्रम पत्थर की नाव की तरह है, निंदित है, पाप का कारण है, अशुभ है और दुर्गति को देने वाला है।

देख! हमने पहले दान नहीं दिया इसी से तो आज दरिद्रता का दुःख सहना पड़ा है और यही कारण है कि हमको उत्तम२ भोजन नहीं मिलता। इसलिये दान जरूर देना चाहिये। जिससे हमारा गृहस्थाश्रम और जीवन सफल होगा साथ ही उत्तम पुण्य तथा लक्ष्मी की सम्प्राप्ति हो सकेगी, जल भरने के लिये चली गई।

इतने ही में पुण्योदय से - बाह्याभ्यन्तर परिग्रह रहित, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूप अमौल्य रत्नत्रय के आधार, दाता को सुख देने के लिये दूसरे कल्पवृक्ष, तपश्चरण के द्वारा क्षीण शरीरी, गुणराशि विराजमान, संसार के जीवों का हित करने में सदा उत्सुक, अङ्ग पूर्वरूप समुद्र के पारगामी, ईर्यापथ रूप उत्तम नेत्र के धारक, सब वस्तुओं में उदासीन, ऊंच-नीच का विचार न करने वाले, धर्म के उपदेशक, इन्द्र, धरणेन्द्र, राजा, महाराजा और भव्य पुरुषों के द्वारा वन्दनीय, महनीय और स्तवनीय, लाभ अलाभ सुख दुःखादि में समदर्शी, जितेन्द्रिय, शांतमूर्ति, परम कारुणिक, दिशारूप वस्त्र के धारक, धीर, अनेक ऋद्धियों से विभूषित और सर्वोत्कृष्ट महापात्र सुव्रत मुनिराज को एक महीने के उपवास के पारणा के दिन शरीर

स्थिति के लिये बलभद्र के घर की ओर आते हुये पास ही में देखकर अकृतपुण्य शुद्ध मन से विचारने लगा।

अहो! ये बड़े भारी साधु हैं। देखो! इनके पास वस्त्रादि कुछ भी नहीं है। ये मेरे बड़े भारी पुण्य से आये हैं। इन्हें मैं न जाने दूंगा। यों विचार कर सरल अकृतपुण्य पुण्य से प्रेरणा किया हुआ झट से उनके सामने जा खड़ा हुआ और अभिवन्दना कर बोला-

पूज्य! माता ने बहुत अच्छी खीर बनाई है वह आपके भोजन के लिये दी जावेगी। मेरी प्रार्थना है कि आप यहीं ठहरें तब तक जल लेकर मेरी माता भी आई जाती है। मुनिराज उसे यह समझाकर कि हमारा यह मार्ग नहीं है रास्ते में धीरे२ चलने लगे इतने में वह भी उनके आगे होकर जोर से बोलने लगा -

तात! मेरे ऊपर दया कर थोड़ी देर ठहरो और यहाँ से न जाओ बड़ी ही अच्छी खीर बनी है। कहो तो तुम्हारा इसमें क्या बिगड़ जाता है ?

इतनी प्रार्थना करने पर भी जब मुनिराज न ठहरे तो अकृतपुण्य पांव पकड़ कर बोला - देखो! अब तो मैंने अपने हाथों से आपको खूब ही जोर से पकड़ रखे हैं देखूं कैसे जा सकोगे ? महाराज! आप बड़े ही दुर्लभ हैं।

आखिर में मुनीन्द्र का भी दिल कुछ करुणार्द्र हो आया सो उसे खेदित न कर थोड़ी देर तक समौन वहीं खड़े रहे। सच तो है साधु लोग सब पर दयालु होते हैं न ?

इतने में ही शुभोदय से उसकी माता भी जल लेकर आ गई। मुनिराज को देखकर उसे बहुत खुशी हुई जैसे दुर्लभ धन के अनायास मिल जाने से खुशी होती है।

शिर पर से घड़ा जमीन पर उतार कर मुनिराज के चरणों को नमस्कार किया और विभो! तिष्ठ! तिष्ठ!! तिष्ठ!!! कहकर स्वामी का पड़गाहन किया बाद में घर में लिवा ले जाकर उनके विराजने को ऊंचा आसन दिया, जगद्गुरु को उस पर बैठाकर गरम जल से उनके चरण कमल धोये और उस पाद पवित्र जल को ललाट में लगाकर उनकी पूजा की।

पश्चात् प्रणाम कर मन वचन काय की शुद्धि से अकृतपुण्य की माता ने पुत्र के साथ-२ बड़ा भारी पुण्य उपार्जन किया। कारण ये नवधा भक्ति पुण्य सम्पादन की हेतु है। बाद में श्रद्धा, शक्ति, निर्लोभता, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा इन सप्त गुणों से युक्त हो उन उत्तम पात्र मुनिराज को मधुर, प्रासुक, निर्दोष, तृप्तिकारक और तपवर्द्धक खीर का आहार देने लगी।

मुनिराज को आहार करते हुये देखकर अकृतपुण्य बहुत आनंदित हुआ। उससे उसे बहुत पुण्य का बन्ध हुआ। वह विचारने लगा -

अहा! आज मैं कृतार्थ हुआ, मैं धन्य हूँ, पुण्यवान हूँ, मैं बहुत ही सुखी हुआ, आज मैं महादाता कहलाया, जन्म सफल हुआ, गृहस्थाश्रम भी आज ही कृतार्थ हुआ, आज मुझे बहुत ही पुण्य होगा और इसी से स्वर्गादि सुख भी मिलेगा।

देखो! न ? आज मैं कितना भाग्यशाली हूँ जो देव, राजा, महाराजा, मनुष्य, विद्याधर, महनीय और वन्दनीय महापात्र मेरे घर में भोजन कर रहे हैं, इन्हीं पवित्र भावनाओंसे शुद्ध हृदय अकृतपुण्य ने अपने सरल भावों के द्वारा बहुत कुछ पुण्य सम्पादन कर लिया, जो स्वर्गादि सुख का कारण है।

उधर जितेन्द्रिय योगिराज ने भी खड़े-२ शांत भावों से स्वाद वगैरह का विचार न कर पाणिपात्र मेंआहार कर दाता को पावन किया और बाद में उन्हें शुभाशीर्वाद देकर आप ध्यानाध्ययन के लिये वन विहार कर गये।

मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धि से विभूषित थे। शास्त्रोंका यह लेख है कि - जिस दाता के यहाँ उक्त ऋद्धिधारक मुनिराज साधुओं का आहार हो जाता है फिर उस दिन उसके यहाँ भोजन सामग्री कम नहीं होती - उससे चक्रवर्ती के सैन्य तक का भोजन हो सकता है। ठीक ऐसा ही अकृतपुण्य के यहाँ ऋद्धिधारी मुनिराज का आहार होने से हुआ - भोजन सामग्री अक्षय हो गई।

जब मुनिराज आहार करके चले गये तब अकृतपुण्य की माता ने अपने पुत्र को यथेष्ट जिमाया और आपने भी जीमा। परन्तु देखती है तो भोजन सामग्री उतनी की उतनी है। तब उसने अपने स्वामी बलभद्र को सकुटुम्ब भोजन के लिये बुलाया और उन्हें खूब जिमाया तब भी जब कम न हुई तो सारे शहर के लोगों को जिमा दिया।

उस महादान से माता पुत्र की बहुत ही प्रसिद्धि हुई। उन्हें सब लोग मानने लगे, चन्द्र की तरह निर्मल सुयश चारों ओर फैल गया और पुण्य उपार्जन करने वाले कहलाये।

कुमार! सुनो- यही दान दुर्गति का नाशक है, हित का करने वाला है। इसलिये बुद्धिमानों को दान देने में कभी आगा पीछा नहीं करना चाहिये।

दान के द्वारा ही गृहस्थता गुणवती कही जाती है, बुद्धिमानों का प्रयत्न दान के लिये हुआ करता है, दान को छोड़कर कोई उत्तम सुख का देने वाला भी नहीं है, समझदार ही दान देने के योग्य होते हैं, दान ही दाता के मन को अपनी ओर खींचता है इसलिये कहना यही है कि सब लोग दान जरूर ही दिया करें।

त्रिकाल सम्बन्धी तत्त्व के विवेचन करने वाले धर्म के अधिष्ठाता जिनेन्द्र, अन्तरहित निरूपम और लोकाग्रवासी सिद्ध, तथा महातपस्वी पञ्चाचार के पालने वाले आचार्य उपाध्याय और साधु इन सबको मैं नमस्कार करता हूँ वह इसीलिये कि ये महात्मा लोग अपने-अपने गुण मुझे वितीर्ण करें।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में
अकृतपुण्य के दान का वर्णन नामक चतुर्थ
अधिकार समाप्त हुआ ॥४॥

# पञ्चम अधिकार

## धन्यकुमार के जन्मांतर का वर्णन

**दृक्चिद्व्रततपोधर्मा नर्घ्यरत्नप्रदान्सताम् ।**
**त्रिजगत्स्वामिवन्द्याङ्घ्रोन्वन्देऽहं परमेष्ठिन: ।।**

दूसरे दिन अकृतपुण्य बची हुई खीर खाकर गाय के बच्चों को चराने के लये वन में चला गया। गरिष्ट आहार के करने से उसे निद्रा आने लगी सो एक वृक्ष के नीचे गाढ़ निद्रा राक्षसी के वश हो गया।

उधर बच्चे उसे न देखकर स्वयं घर पर आ गये। अकृतपुण्य की माता बच्चों को देखकर विचारने लगी कि - क्या कारण है जो बच्चे तो आ गये और पुत्र नहीं आया ? पुत्र की चिन्ता से दुःखी होकर रोने लगी। (बलभद्र से उसको ढूंढने को कहा।)

मृष्टदाना के आग्रह से बलभद्र अपने नौकरों को साथ लेकर उसके अन्वेषण को निकला। उधर जब अकृतपुण्य की निद्रा खुली तो देखता है कि बच्चे नहीं हैं। बड़ा ही व्याकुल होकर घर की ओर आ रहा था सो दूर से ही बलभद्र को अपने सामने आता हुआ देखकर डर के मारे पर्वत पर चढ़ गया।

बलभद्र उसे देखकर घर लौट आया और अकृतपुण्य वहीं गुहा के बाहर खड़ा हो गया।

उसी गुहा में श्रीसुव्रत मुनिराज वन्दना के लिये आये हुये श्रावकों को व्रत का स्वरूप, भेद तथा फल सुना रहे थे जिससे उन्हें धर्मलाभ हो सके। सो बाहर बैठा हुआ अकृतपुण्य भी सश्रद्धा सुन रहा था। उसका सार यह है –

जैसे वृक्षों का मूल उनकी मजबूती का कारण होता है उसी तरह सब व्रत और धर्म का मूल उत्तम सम्यग्दर्शन है और वही त्रिभुवन पूज्य है। सप्त तत्व, नव पदार्थ, देव, गुरु और शास्त्र के शङ्कादि दोष रहित श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। सप्त व्यसन महा पाप के कारण और नरक में ले जाने वाले हैं इसलिये बुद्धिमानों को पहले इनका परित्याग करना चाहिये।

मद्य, मांस,मधु (सहत) और पञ्च उदम्बर फल के छोड़ने को आठ मूलगुण कहते हैं। ये मूल गुण पालन किये जांय और सातों व्यसन छोड़े जांय वही सब व्रतों की मूल दर्शन प्रतिमा है।

पांच अणुव्रत, चार शिक्षाव्रत और तीन गुणव्रत ये बारह व्रत कहे जाते हैं। उनमें विकलत्रय (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) तथा पञ्चेन्द्रियों की मन, वचन, काय से जो व्रती पुरुष व्रत लाभ के लिये रक्षा करते हैं वह पहला अहिंसाणुव्रत है। यह व्रत सब धर्म तथा व्रत का बीज माना जाता है। देखो! जिन भगवान ने जितने व्रत समिति प्रभृति के पालने का गृहस्थ तथा साधुओं के लिये जो उपदेश दिया है वह केवल इसी एक अहिंसा व्रत के लिये है।

हित रूप, परिमित, मधुर, धर्म को लिये हुये, सन्देह रहित, सब जीवों के सुख के कारण, कोमल, दूसरों की निन्दा रहित और विश्वास योग्य सत्य वचन बोलने को सत्याणुव्रत कहते हैं। यह व्रत भी विद्या, कीर्ति और पुण्य का हेतु है।

अचौर्याणुव्रत उसे कहते हैं जो पड़े हुये, भूले हुये, खोये हुये और कहीं पर रखे हुये दूसरों के धन का न लेना है। जैसे काले सर्प के पकड़ने में भय होता है उसी तरह उससे भी धर्म की रक्षा के लिये पाप से डरने वाले पुरुषों को डरना चाहिये। क्योंकि इससे दूसरे लोगों को बड़ा ही दुख होता है। इस व्रत का फल सुखोपभोग करना है।

शुद्ध हृदय, सुशील और अपनी ही स्त्री में सन्तोष रखने वाले महात्माओं को अपने शीलव्रत की रक्षा के लिये संसारभर की स्त्रियाँ माता और पुत्री की तरह देखनी चाहिये। यही त्रिभुवनजन महनीय चौथा ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

बुद्धिमानों को लोभ कषाय घटाने के लिए धन, धान्य, सुवर्ण, प्रभृति दस प्रकार बाह्य परिग्रह का परिमाण करना चाहिये। क्योंकि इसके द्वारा आशा दिनों दिन बढ़ती जाती है और चिन्ता तथा दुःख होता है। यह बुरा है। यह परिग्रह परिमाण पाँचवा अणुव्रत कहा गया है।

दया तथा सन्तोष के लिये योजनादि के प्रमाण से दश दिशाओं में जाने की संख्या करना है उसे दिग्विरतिव्रत कहते हैं।

जो निष्प्रयोजन हिंसादि पाप किया जाता है उसके छोड़ने को अनर्थदण्डविरति कहते हैं। अनर्थदण्ड केवल पाप का कारण है। उसके-पापोपदेश, हिंसादान, दुःश्रुति चिंतवन, खोटे शास्त्रों का सुनना और प्रमादचर्या ये पांच भेद हैं।

अनन्तकायिक कन्दमूलादि, सजीव फल पुष्पादि और अचार (अथाना) ये सब भी निंदनीय हैं अतः बुद्धिमानों को छोड़ने चाहिये। एक वक्त ही सुख के कारण - अन्न पानादि भोग्य वस्तुओं का और बार-२ उपभोग में आने वाले वस्त्र, स्त्री प्रभृति उपभोग्य वस्तुओं का इंद्रिय रूप चोरों के वेग को रोककर शांति के लिये जो नियम करना है उसे भोगोपभोग नामक व्रत कहते हैं। यह व्रत सब सुख सामग्री का स्थान है।

शहर गली ग्राम आदि के द्वारा प्रतिदिन दिशाओं में गमन करने की संख्या का नियम करने को देशावकाशिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

आर्त्त और रौद्रादि दुर्ध्यान के त्यागपूर्वक शांत भाव से प्रातःकाल, मध्याह्न काल और सांयकाल में मन, वचन, काय की शुद्धि के द्वारा -अर्हत्सिद्ध, जिनवचन, जिनधर्म और साधुओं की वन्दना करने को सामायिक व्रत कहते हैं। यह व्रत धर्म का स्थान पाप का निर्मूल नाश करने वाला है।

अष्टमी और चतुर्दशी के दिन - सब गृहारम्भ छोड़कर और गुरु के द्वारा उपवास का नियम करके धर्म ध्यान के द्वारा काल

बिताने को प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत कहते हैं। इसका फल स्वर्गादि सुख सामग्री का मिलना है।

नियमपूर्वक प्रतिदिन पात्र दान के लिये गृहद्वार पर खड़े होकर निरीक्षण करना और साक्षात्पात्र के मिलने पर सभक्ति दान देना यह वैयावृत्य शिक्षाव्रत है।

इसके द्वारा अपना और दूसरों का हित होता है और यही सब सुख का भी कारण है। इन बारह व्रतों का निरतिचार यावज्जीवन पालन करना चाहिये और अन्तिम समय में मोह परिग्रहादि का परित्याग कर जिन दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

जब आयु के अन्त का परिज्ञान हो जाय तब उपवासादि के द्वारा दोनों प्रकार की सल्लेखना धारण करनी उचित है। क्योंकि इसी के द्वारा तो सब व्रतादि सार्थक होकर स्वर्ग और मुक्ति सुख के कारण होते हैं। इन्हीं बारह व्रत के पालने को दूसरी प्रतिमा कहते हैं। तीसरी सामायिक प्रतिमा है और चौथी प्रोषधोपवास प्रतिमा है। अप्रासुक और सजीव वल्कल, बीज, फल, पत्र, जल, प्रभृति सहित वस्तुओं का करुणा बुद्धि से जो छोड़ना है उसे पांचवी सचित्त त्याग प्रतिमा कहते हैं। जिन भगवान ने इसे सब जीवों की हितकारक बताई है।

खाद्य, स्वाद्य आदि चार प्रकार के आहार का रात्रि में परित्याग करना जिससे जीव हिंसा न होने पावे और दिन में ब्रह्मचर्य व्रत रखना (अपनी स्त्री के साथ भी दिन में विषय सेवन

न करना) यह छठी रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा का लक्षण है। इस प्रतिमा का फल अच्छे आदारा का होता है।

जो विरक्त महात्मा पुरुष यह समझकर कि स्त्रियाँ पुरीष के भरे कलश की तरह अपवित्र हैं, सो उन्हें दूर से ही छोड़कर सर्वथा ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं यह सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा मानी गई है। यह प्रतिमा सब सुखों की खानि है और परम्परा शिव-सुख की साधन है।

जो पाप से डर कर सब प्रकार के गृह, वाणिज्य और कृषि आदि आरंभ का अपने हित के लिये मन, वचन काय पूर्वक परित्याग कर देते हैं वह आठवीं आरंभ त्याग प्रतिमा कहीजाती है। इसके द्वारा सब पापास्रव का निरोध होकर सुख मिलता है।

जो सन्तोष रूप अनुपम खड्ग के द्वारा मूर्च्छा राक्षसी का नाम शेष करके त्रिशुद्धि पूर्वक वस्त्रावशेष सब परिग्रह का त्याग कर देते हैं यही नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप उत्तम रत्नों की खानि है।

मोक्ष सुख के चाहने वाले जो पुरुष - विवाह, खान, पान आदि जितने पाप के और जीवों की हिंसा के कारण घर के कर्म हैं उनमें मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक सम्मति (सलाह) का परित्याग करते हैं उसे अनुमति विरति दशवीं प्रतिमा कहते हैं। जिनेन्द्र ने इसे सब सुखों की जननी कहा है।

जो खण्ड/वस्त्र के धारक केवल अपनी शरीर स्थिति के

लिये कृत, कारित और अनुमोदना रहित निर्दोष भिक्षावृत्ति दूसरों के यहाँ करने जाते हैं (वह केवल इसी इच्छा से कि तपश्चरण निर्विघ्न सधता जाय) उसे उद्दिष्ट त्याग ग्यारहवीं प्रतिमा कहते हैं। यह प्रतिमा त्रिभुवन महनीय है।

जो श्रावक लोग इन ग्यारहों प्रतिमाओं का संसार से उदासीन होने के लिये पालन करते हैं वे वचन अगोचर सोलह स्वर्ग पर्यन्त सुखोपभोग करके अथवा चक्रवर्ती आदि की लक्ष्मी के स्वामी होकर अन्त में नियम से मोक्ष जाते हैं।

जब अकृतपुण्य ने इन व्रतों का स्वरूप सादर सुना तो उसकी इनमें बड़ी ही श्रद्धा और भावना हो गई। अहा! ये व्रत बड़े ही उत्तम और सब सुख देने वाले हैं। क्या ही अच्छा हो यदि मुझे जीवन-२ में इनका लाभ हो सके। अकृतपुण्य के व्रतादि की भावना रूप उत्तम परिणामों के द्वारा जो शुभ कर्म का बन्ध हुआ, उसे स्वर्ग सुख का साधन कहना चाहिये।

जब मुनिराज का धर्मोपदेश हो चुका तब सब श्रावक उन्हें नमस्कार कर और "णमो अरिहंताणं" इस मन्त्रराज के आदि चरण का उच्चारण करते हुये शैल गुहा से बाहर निकले।

अकृतपुण्य भी मन्त्रराज का ध्यान करता हुआ उन लोगों के पीछे-२ चलने लगा सो इतने में उसके पूर्व जन्म के प्रबल पाप के उदय से उसे एक क्षुधातुर व्याघ्र ने आकर खा लिया। अकृतपुण्य मंत्र का स्मरण करता हुआ ही ससमाधि धराशायी हो गया।

उसने जो पात्र दान प्रभृति शुभ कर्मों के द्वारा पुण्य सम्पादन कर रखा था वह इस वक्त काम आ गया सो उसे सौधर्म स्वर्ग में महर्धिक देव का स्थान मिला।

देखो! अकृतपुण्य का भाग्योदय जो कहाँ तो उसके प्रबल पाप का उदय और कहाँ दुर्लभ पात्रदान ? व्रत में शुभ भावना तथा निधि की तरह दुर्लभ मन्त्रराज की अन्त समय में प्राप्ति, जो स्वर्ग के द्वार के कारण समझे जाते हैं। अथवा यों कह दो कि जब शुभ वा अशुभ जैसी गति होना होती है तब उसी तरह की सामग्री भी मिल जाती है।

उधर अकृतपुण्य की माता मोह के वश होकर प्रातःकाल ही बलभद्र को साथ लेकर उसको ढूंढने को निकली और धीरे-धीरे उसी पर्वत पर जा पहुँची। वहाँ जाकर देखती है तो प्यारे पुत्र का आधा खाया हुआ कलेवर पड़ा हुआ है। उसके देखते ही उसकी जो दशा हुई वह अवर्णनीय थी। शोक का वेग उससे न रुका सो कातर स्वर से मुक्तकण्ठ होकर रोने लगी।

उधर अकृतपुण्य दिव्य उपपाद शय्या में जन्म लेकर मुहूर्त मात्र में पूर्ण यौवन से सुन्दर देव हो गया। वह सोते हुए की तरह उपपाद शय्या से उठा और स्वर्ग की बड़ी भारी सम्पत्ति, देव सुन्दरियाँ अपने सामने विनम्र खड़े देवता लोग और रत्नों के बने हुये उत्तम-२ महल इत्यादि विभव देखकर विचार करने लगा -

हा! मैं कौन हूँ ? यह सुखमय स्थान किसका है ? ये दिव्य

देह कौन हैं ? ये सुन्दरियाँ किनकी हैं ? और महलादि बहुत सी विभूति किसकी है ? ऐसा मेरा कौन भाग्योदय है जो मैं ऐसे सुख-स्थान में लाया गया ।

इतना विचार करते ही उसे अवधिज्ञान हो गया जिसके द्वारा पूर्व जन्म की सब बातें जानी जा सकती हैं। उसके द्वारा यह सब महिमा उसने दानादि के फल की समझी।

उसे मालूम हुआ कि मेरी माता रो रही है सो पहले ही धर्म लाभ के लिये जिन मंदिर में गया और वहाँ उत्तम-२ द्रव्यों से तथा गीत वादित्र से जिनेन्द्र की महापूजा की जो पुण्य उपार्जन की कारण है। बाद में स्वर्गीय विभूति स्वीकार कर विमान पर चढ़ा और बहुत सम्पत्ति के साथ माता को समझाने के लिये पृथ्वी पर आया और उसे शोक से कातर देखकर बोला -

माता! तू नहीं जानती कि मैं तेरा पुत्र हूँ परंतु पात्रदान और व्रतादि की शुभ भावना के फल से तथा नमस्कार मंत्र के जपने से मुझे स्वर्ग में देव पद मिला है। इसलिये व्यर्थ ही अब क्यों रो रही है ? इससे तो उलटा पाप का बन्ध होता है।

देख! स्वर्ग बड़ा ही उत्तम स्थान है, उसमें सदा ही सुख रहता है। बहुत उत्तम-२ विभूति है जहाँ दुःख का नाम तक नहीं। वहाँ के विभव का वर्णन कुछ तुझे भी सुनाये देता हूँ।

संख्यात और असंख्यात योजन चौड़े पंच वर्ण के विमान हैं उनमें मणिमय जिनालय, महल और शैल बने हुये हैं, इच्छा के माफिक दूध देने वाली गाये हैं, कल्पवृक्ष हैं और रत्न श्रेष्ठ

चिन्तामणियाँ हैं, लावण्य रस की खानि बहुत-सी देव सुन्दरियाँ हैं तो यों समझ कि उत्तम-२ जितनी सुख सामग्री है वह सब एक ही जगह इकट्ठी कर दी गई है।

जहाँ दुःखी, दीन, रोगी, मूर्ख, निस्तेज, कुरूप और दरिद्री तो स्वप्न में भी नहीं दिख पड़ते हैं। न दुःखप्रद ऋतु है, न शीत है, न उष्ण है और न रात्रि दिन का ही भेद है। थोड़े में यों कह दूँ कि वहाँ ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो दुःखजनक हो, किन्तु सदा सुख जनक साम्यकाल रहता है उसका वर्णन करना कवि लोगों को भी जरा मुश्किल है इत्यादि सुखपूर्ण सौधर्म स्वर्ग में मैंने बहुत पुण्य से जन्म लिया है।

यदि मैं यह भी कहूँ कि मैं सुख-समुद्र में निवास करता हूँ तो कुछ अत्युक्ति नहीं कही जा सकती। इसलिये माता! अब तुम शोक छोड़ो और मोह रूप शत्रु का नाश कर देव दुर्लभ संयम स्वीकार करो तो बहुत अच्छा हो।

इस प्रकार माता को समझाकर वह देव अपने स्थान पर चला गया और सुख पूर्वक रहने लगा।

मृष्टदाना अपने भूतपूर्व पुत्र के वचन सुनकर बहुत आश्चर्यान्वित हुई, शोक को हृदय से हटाया और विरक्त होकर फिर विचारने लगी - देखो! कितने आश्चर्य की बात है जो थोड़े ही दानादि शुभ कर्म करने से आज मेरा पुत्र कितने विभव का भोगने वाला हुआ है तो कौन बुद्धिमान होगा जो व्रतादि शुभ आचरणों के द्वारा ऐसे कामों में प्रवृत्त न होगा ? क्योंकि बार-२

मानव जन्म का मिलना बड़ा ही दुर्लभ है।

इस विचार के साथ ही मृष्टदाना ने सब गृह जंजाल छोड़ा और उसी वक्त अपने कल्याण के लिये जैनेश्वरी प्रव्रज्या (दीक्षा) स्वीकार की।

बिचारी मृष्टदाना थी तो स्त्री ही न? सो उसे सहसा ज्ञान कैसे हो सकता था? यही कारण है कि उसने कुछ विचार न कर अज्ञान से यह निदान कर लिया कि जन्मान्तर में भी यह मेरा प्रेम-भाजन पुत्र हो और शक्त्यनुसार जीवन पर्यन्त तपश्चरण करने लगी। अन्त में ससमाधि आयु का भाग पूर्ण कर उसी स्वर्ग में देवी हुई।

बलभद्र ने भी देव को देखकर समझ लिया कि यह सब धर्म का फल है सो वह भी सब कुटुम्बादि को छोड़कर दीक्षित हो गया और अन्त में समाधि पूर्वक जीवन पूर्ण कर तपश्चरण के प्रभाव से उसी जगह देव हुआ।

मुनिराज धन्यकुमार से कहते हैं - कुमार! वही बलभद्र सौधर्म स्वर्ग में बहुत काल पर्यन्त अच्छे-२ सुख भोगकर अन्त में वहाँ से चलकर तुम्हारा पिता धनपाल हुआ है। मृष्टदाना का जीव तुम्हारी माता है इसी से उसका तुम्हारे पर अधिक प्रेम है। और जो भूतपूर्व वत्सपाल (अकृतपुण्य) का जीव देव हुआ था वही तुम हो।

स्वर्ग में तुमने बहुत काल तक उत्तम-२ सुख भोगे हैं और अपनी सुन्दरियों के साथ-२ जिनपूजादि शुभ कर्म भी किये हैं

यही कारण है कि यहाँ भी तुम्हें वही अपूर्व सुख है और जो बलभद्र के दुष्ट सात पुत्र थे वे ये ही सब देवदत्त प्रभृति सात भाई हैं सो उसी पूर्व बैर के सम्बन्ध से तुमसे ईर्ष्या करते हैं, तुम्हें मारना चाहते हैं और पग-पग में जो तुम्हें खजाने मिलते और विघ्न नष्ट होते हैं यह सब पात्रदान का फल है। बस यही तुम्हारी जीवनी का सार है।

कुमार! यह तो तुमने अच्छी तरह जान लिया कि - तुम्हें जो यह पूर्ण लक्ष्मी का और सौन्दर्य का लाभ हुआ है वह केवल पूर्व जन्म के सुपात्र दान, उत्तम श्रवण और आर्हद्भगवान के नाम स्मरण का फल है। इसलिये अब भी तुम्हें उचित है कि उपर्युक्त शुभ कर्मों के द्वारा धर्मसेवन करो। देखो! यही धर्म तुम्हारे अभिष्टका देने वाला है।

अन्त में कहना यह है कि -

जब तक तुम संसार में रहो धर्म मत भूलो, धर्म का आश्रय लो, धर्म के द्वारा धर्म के अपूर्व सार को समझो, धर्म के लिये अभिवन्दना करते रहो, धर्म को छोड़कर किसी दूसरे की सेवा मत करो, धर्म की मूल करुणा है उसे सदा याद रखो, धर्म में निश्चलचित्त रहो और धर्म ही से यह प्रार्थना करो कि - हे धर्म! तू मेरी रक्षा कर।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में
धन्यकुमार के जन्मान्तर का वर्णन नामक पांचवा
अधिकार समाप्त हुआ ॥५॥

# छठा अधिकार

## धन्यकुमार के राज्य-लाभ का वर्णन।

**त्रिजगन्नाथनाथेभ्यो गरिष्टेभ्यो महागुणैः।**
**परमेष्ठिभ्य आत्माप्त्यै विश्वार्च्येभ्यो नमोऽन्वहम्॥**

धन्यकुमार, मुनिराज रूपी चन्द्रमा के द्वारा उत्पन्न हुये, जन्म, जरा, और मरण के नाश करने वाले तथा शिव-सुख के कारण धर्मामृत का पान कर बहुत सन्तुष्ट हुआ और साथ ही अपनी बुद्धि को धर्म में दृढ़ की।

बाद में मुनिराज को नमस्कार कर राजगृह जाने के लिये रवाना हुआ सो धीरे-२ वहीं पहुंचकर शहर के बाहर एक बगीचा देखा। रास्ते की थकावट मिटाने के अभिप्राय से उसके भीतर चला गया। जाकर देखता है तो सारा बगीचा सूखा पड़ा हुआ है। यहां पर प्रसंगानुसार कुछ बगीचे के सम्बन्ध की कथा लिख दी जाती है -

इस बाग के मालिक का नाम कुसुमदत्त था। उसका जन्म वैश्य कुल में हुआ था। यह राजकाज करने वाले जितने लोग थे उन सबका स्वामी था। उसे सब मानते थे।

जब उसने देखा कि बाग सारा सूख गया है तो उसे काटना चाहा किन्तु एक दिन उसे अवधिज्ञानी मुनिराज के दर्शन हो

गये। कुसुमदत्त ने उन्हें नमस्कार कर पूछा -

स्वामिन्! मेरा उपवन सूख गया है सो वह फिर भी कभी फलेगा या नहीं ? उत्तर में मुनिराज ने कहा - वैश्यवर! कोई पुण्यात्मा महापुरुष दूसरे देश से आकर इस बाग में प्रवेश करेगा तभी यह फिर से फल पुष्पादि से समृद्ध होने लगेगा।

कुसुमदत्त मुनिराज के कहे अनुसार निश्चय कर तभी से प्रतीक्षा करने लगा सो आज धन्यकुमार के प्रवेश मात्र से सूखे सरोवर निर्मल जल से भर गये और वृक्ष फल पुष्पादि से नम्र हो गये। सच है पुण्य के प्रभाव से सब कुछ हो सकता है।

धन्यकुमार वहीं जिन भगवान का ध्यान कर और सरोवर में निर्मल जल पीकर किसी वृक्ष के नीचे बैठ गया।

जब यह हाल कुसुमदत्त ने सुना तो उसे झट से मुनिराज के वचन याद हो आये। मुनिराज के चरणों को परोक्ष नमस्कार कर बाग में आया और कुमार को बैठा हुआ देखकर उसे नमस्कार कर पूछा -

बुद्धिमान! क्या मुझे कुछ बातें बताकर कृतार्थ करेंगे ? वे ये हैं - आप कौन हैं ? किस सुकुल में आपका अवतार हुआ है और कहाँ से आप चले आ रहे हैं ?

कुमार ने कहा - मैं वैश्य पुत्र हूँ, दूसरे देशों में घूमता हुआ इधर आ निकला हूँ और मैं जैन धर्मी हूँ।

कुसुमदत्त ने कहा - यदि ऐसा है तो मैं भी तो जैनी हूँ

आपका और हमारा धार्मिक सम्बन्ध है इसलिये हमारे यहाँ अतिथि होना स्वीकार करिये।

धन्यकुमार ने यह बात मान ली। बाद में कुसुमदत्त, धन्यकुमार को बड़े सत्कार के साथ घर लिवा ले गया और उसकी प्रेम तथा भक्ति के साथ सेवा करने के लिये अपनी स्त्री से बोला -

यह मेरी बहन का पुत्र है इसलिये इसका अतिथि सत्कार अच्छी तरह होना चाहिये। कुसुमदत्त की स्त्री ने यह समझकर कि यह भावी मेरा जवांई होने वाला है इसलिये धन्यकुमार को स्नान और भोजन वगैरह बड़े प्रेम के साथ करवाया।

कुसुमदत्त की एक सुन्दरी कन्या थी। उसका नाम था पुष्पावती। सो वह धन्यकुमार के सौन्दर्य को देखकर उस पर मोहित हो गई।

दूसरे दिन उसने यह विचार कर कि देखूं यह कितना बुद्धिमान है? सो उसके विज्ञानादि गुण की परीक्षा के लिये धन्यकुमार के सामने कुछ सुन्दर-२ फूल और सूत रख दिया। कुमार बुद्धिमान तो था ही सो उसने उन फूलों की अपनी चातुरी से बहुत सुन्दर एक माला गूंथ दी।

उन दिनों राजगृह के श्रेणिक महाराज स्वामी थे। उनकी कान्ता थी चेलनी और गुणवती नामकी पुत्री थी।

पुष्पावती उसी राजकुमारी के लिये प्रतिदिन फूलों की माला बनाकर ले जाया करती थी। किंतु आज वह धन्य कुमार की बनाई हुई माला लेकर गई।

उसे देखकर राजकुमारी बोली – पुष्पावती! इतने दिन तू हमारे घर क्यों नहीं आई ? उसने उत्तर दिया – सखि! क्या करूं मेरे घर पिताजी की बहिन का पुत्र आया हुआ है सो उसीकी सेवा में लगी रहती हूँ। यही कारण मेरे न आने का है।

जब राजकुमारी की आंख उस माला पर पड़ी तो उसने पुष्पावती से पूछा - आज तो माला बड़ी ही सुन्दर दिखाई पड़ती है, कह तो किसने गूंथी है ? पुष्पावती ने कहा –

यह उसी सुचतुरभाग्यशाली का काम है। यह सुनकर राजकुमारी कुछ हंसकर बोली – तू तो बड़ी भी भाग्यवती है जो ऐसे उत्तम वर की तुझे सङ्गति मिलेगी।

एक दिन धन्यकुमार बाजार में जा रहा था सो चलते-२ अपनी इच्छा से किसी सेठ की दुकान पर बैठ गया। उस वक्त सेठ महाशय को व्यापार में बहुत कुछ फायदा हुआ। इसका कारण उन्होंने बैठे हुये पुण्यात्मा धन्यकुमार को समझकर उससे कहा -

मित्र! मेरी एक सुन्दरी कन्या है उसका विवाह तुम्हारे ही साथ करूँगा। ठीक है – धर्मात्माओं को धर्म के द्वारा सब जगह लाभ हुआ करता है।

दूसरे दिन धन्यकुमार शालिभद्र सेठ की दुकान पर जाकर बैठ गया सो उसे भी व्यापार में फायदा हुआ। उसने भी इसका कारण धन्यकुमार ही को समझकर कहा -

भद्र! सुभद्रा नामकी एक मेरी बहिन की लड़की है उसका विवाह तुम्हारे साथ किया जावेगा।

वहीं एक राजश्रेष्ठी रहता था। उसका नाम था श्रीकीर्ति। एक दिन उसने सारे शहर में यह ढिंढोरा पिटवाया कि "जो वैश्यपुत्र तीन काकिणी (दमड़ी) के द्वारा एक ही दिन में एक हजार दीनार पैदा करके मुझे देगा उसके साथ अपनी धनवती पुत्री का विवाह कर दूंगा।"

ढिंढोरे को सुनकर उसी वक्त धन्यकुमार ने काकिणी (दमड़ी) ले ली। उसके द्वारा उसने माला लटकाने के तृण खरीदे और उन्हें माली लोगों को देकर बदले में कई रंग के उनसे फूल ले लिये।

उन फूलों की अपने ही हाथों से बहुत सी सुन्दर-२ मालायें बनाकर उन्हें खेलने के लिये वन मेंजाते हुये राजकुमारों को दिखलाई।

देखकर राजकुमारों ने मालाओं का जब मूल्य पूछा तो धन्यकुमार ने एक हजार दीनार कहा। जब पुण्य का उदय होता है तब कहीं न कहीं से अपनी इच्छा के अनुसार कारण भी जरुर मिल जाते हैं। ठीक यही धन्यकुमार के लिये भी हुआ, सो उन राजपुत्रों ने एक हजार दीनारें देकर वे सब मालायें खरीद कर लीं।

धन्यकुमार ने दीनारें ले जाकर सेठ को दे दी। सेठ ने अपना वचन पूरा करने के लिये धन्यकुमार के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया।

इसी तरह बुद्धिमान धन्यकुमार की बहुत प्रशंसा सुनकर और गुप्त रीति से उसके रूप को देखकर राजकुमारी गुणवती उस पर जी जान से मुग्ध हो गई। दिनों दिन उसकी चिन्ता से उसका शरीर भी सूखने लगा।

एक दिन धन्यकुमार, मन्त्री आदि बड़े-२ लोगों के पुत्रों के साथ जुवां खेलता था सो उसने उन लोगों को बात की बात में जीतकर अभिमान रहित कर दिये।

वहीं पर श्रेणिक महाराजा का पुत्र अभयकुमार भी बैठा हुआ था। उसे अपनी चतुरता का बड़ा घमण्ड था। उसके साथ कितने और भी धनुर्धारी योद्धा थे। सो वह धन्यकुमार के साथ बाण के द्वारा लक्ष्य वेधने के लिये झगड़ा करने लगा बाद में चन्द्रक यंत्र का वेधना निश्चित किया गया। यद्यपि इसका वेधना हर एक के लिए बड़ा ही कठिन है तो भी कुमार ने पुण्य प्रभाव से उसे वेधकर देखते-२ राजकुमार को हरा दिया।

यह अपमान उन्हें सहन नहीं हुआ अतः सब मिलकर उसके साथ वैर करने लगे और किसी तरह उसके मारने का उपाय करने लगे। विचारा कुमार धर्मात्मा और सरल हृदय था, सो उसे इन लोगों का कपटभाव मालूम न हुआ।

उधर श्रेणिक को पुत्री के दिनों दिन दुबली होने का जब कारण मालूम हुआ तो विचार कर अपने पुत्र वगैरह से पूछा - देखो यह कुमार रूपवान और गुणी है। इसके साथ गुणवती का विवाह किया जाना उचित है या नहीं ?

उनमें से अभयकुमार आगे होकर ईर्ष्या से कहने लगा - वह विदेशी है, उसके कुल तथा जाति का कुछ ठिकाना नहीं। क्या मालूम अच्छे हैं या बुरे हैं ? इसलिए कन्या का देना मेरी समझ के अनुसार सर्वथा बुरा है।

अभयकुमार का कहना सुनकर श्रेणिक ने खुले शब्दों में कहा -

देखो!गुणवती के दिल में तो उसी की चाह है और इसी से वह दिनों दिन कामाग्नि से जली जा रही है। यदि ऐसी हालत में भी उसका विवाह न किया जाय तो उसके जीने का क्या उपाय है?

अभयकुमार से आखिर में न रहा गया सो उसने साफ-साफ कह ही तो दिया-

पिताजी! इसका उपाय हो सकता है कि जब तक वह जीता रहेगा तभी तक गुणवती कामका जनित दुःख भी बढ़ेगा ही। इसलिये...सुनकर श्रेणिक ने घृणा के साथ कहा - वह बिचारा निरपराध है उसको मैं कैसे मरवा सकता हूँ ? यह न्याय नहीं किन्तु अन्याय है।

अभयकुमार ने फिर कहा - अच्छा, आप कुछ न करें, हम ही इसके मारने का कोई उपाय कर इसका अभिमान नष्ट करेंगे।

उत्तर में श्रेणिक ने किसी तरह पुत्र को समझाने के लिये कहा - वह क्या उपाय है जिससे इसे मार सकोगे ? राजकुमार बोला -

शहर के बाहर राक्षसों का एक स्थान है। पहले उसमें कितने ही लोग राक्षस के हाथ से मारे गये हैं इसलिये ''जो धीर पुण्यवान इस स्थान के भीतर जायेगा उसके लिये आधा राज्य तथा पुत्री दी जायेगी।''

शहर भर में ऐसा ढिंढोरा पिटवाना चाहिये सो उसे सुनकर वह नियम से अभिमान में आकर उस मकान के भीतर जायेगा ही सो मारा जावेगा।

पुत्र के विचार के माफिक श्रेणिक ने ढिंढोरा पिटवा दिया। धन्यकुमार ने उसे सुना फिर भला उस मकान के भीतर गये बिना उसे कैसे चैन पड़ सकता था ? उसे बहुत लोगों ने मना भी किया परन्तु उसने एक की न सुनी और दोपहर के वक्त खेलता हुआ बिना आयास के जैसे अपने घर में जाना होता है उसी तरह निडर होकर राक्षस भवन में चला गया।

धन्यकुमार को देखते ही राक्षस उल्टा शांत हो गया और सामने आकर उसे नमस्कार किया। बाद में सत्कारपूर्वक सुन्दर आसन पर बैठाकर विनय से बोला -

विभो! आप मुझे अपना दास समझें। मैंने इतने काल तक खजाञ्ची होकर आपके इतने बड़े भारी मकान की और धन की रक्षा की। अब आप आ गये हैं सो अपना धन सम्हाल लीजिये। यह आप ही के पुण्य का कमाया है।

ऐसा कहकर सब धन धन्यकुमार के सुपुर्द कर दिया। और

जब आप मुझे याद करेंगे तब हाजिर हो सकूंगा, मैं आपका दास हूँ इतना कहकर अन्तर्हित हो गया।

धन्यकुमार ने शुभध्यानपूर्वक रात्रि वहीं बिताई। सच कहा है - पुण्यजानों को सब जगह लाभ ही हुआ करता है।

उधर जब उन कन्याओं को धन्यकुमार के राक्षस भवन में जाने का समाचार मिला तो सबों ने यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि जो गति धन्यकुमार की होगी वही हमें मंजूर है।

रात्रि पूर्ण हुई, सवेरे का उजाला चमकने लगा। इतने में धन्यकुमार भी प्रातःकालीन सामायिकादि क्रिया करके बहुत खुशी के साथ मकान से बाहर निकलकर शहर की ओर आने लगा।

उसे धन लेकर शहर की ओर आते हुये देखकर राजा वगैरह को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अपने दिल में विचारने लगे कि यह साधारण पुरुष नहीं है किंतु नर-केशरी है। इसे कोई नहीं जीत सकता। यह बड़ा भारी पुण्य पुरुष है।

यही समझ श्रेणिक और अभयकुमार आदि आधी दूर तक उसके सामने गये और उसे बहुत सन्मानपूर्वक लाये। बाद में राजमहल में लिवा जाकर भूषण वस्त्रादि से उसका सत्कार किया और पूछा -

प्रेमपात्र! कहो तो तुम किस उत्तम कुलरूप आकाश के विशाल चन्द्रमा हो और अकेले ही किस काम के लिए यहां आये हुये हो ?

उत्तर में धन्यकुमार ने कहा - मैं उज्जयिनी में रहता हूँ और वैश्यकुल में मेरा जन्म हुआ है। तीर्थयात्रा करता-२ इधर आ गया हूँ। यह सुनकर श्रेणिक बहुत खुश हुये और उसी समय बहुत धन खर्च कर अपने ही मकान में विवाह मण्डप तैयार करवाया और बहुत कुछ समारोह के साथ गुणवती आदि सोलह कन्याओं का धन्यकुमार के साथ विधिपूर्वक विवाह कर सानन्द उसे अपना आधा राज्य दे दिया। धन्यकुमार को मनुष्य और देव आदि सब कोई मानने लगे।

कुछ दिनों बाद - धन्यकुमार ने वैश्य आदि सभी जाति के मनुष्यों से युक्त एक सुन्दर नगर बसाया और वहाँ का राजा भी आप ही हुआ। बड़े-२ राजपुत्र उसके चरणों की सेवा करने लगे।

धन्यकुमार सुखपूर्वक राज्य पालन करने लगा। कुमार समय-२ पर जिन धर्म की बड़ी प्रभावना किया करता था।

इस प्रकार धन्यकुमार का दर्शन उज्जयिनी में राजा मंत्री आदि सभी लोगों को बड़ा ही सुखकर होता था। परन्तु खेद है कि उसके माता-पिता तो दिन रात दिल के भीतर ही भीतर इसके वियोग से जल रहे थे।

अब कुछ धन्यकुमार के माता-पिता का हाल सुनिये -

जब धन्यकुमार वहाँ से चला आया उसी दिन घर के रक्षक देवता लोगो ने उसके माता पिता और भाईयों को निकाल घर से बाहिर कर दिये। वे सब वहाँ से निकलकर फिर अपने पुराने घर पर गये।

इधर उनकी इनकी हालत बड़ी बुरी थी। वे ऐसे मालूम देते थे जैसे दावाग्नि से जले हुये वृक्ष हों, बड़े ही शोक से पीड़ित तथा दुःख के मारे विमूढ़ हो रहे थे।

उस वक्त शहर के लोग बड़े ही आश्चर्य के साथ परस्पर में कहते थे कि देखो! ये लोग कितने निर्दयी और पापी हैं - इनका हृदय वज्र की तरह बहुत कठोर है जो ऐसे सुपुत्र के चले जाने पर भी अभी तक जीते हैं अथवा यों कह लो कि दुःखी पुरुषों के पास मृत्यु भी आकर नहीं फटकती है क्योंकि उनके बड़ा ही खोटे कर्मों का उदय बना रहता है।

उन लोगों के अन्याय करने से थोड़े ही दिनों में जितना पुराना और नवीन धन था वह सब जाता रहा और कुपुत्रों के तीव्र पाप से इनकी यहाँ तक दशा बिगड़ी कि खाने और पेट भरने तक की मुश्किल पड़ने लगी।

तब धनपाल किसी काम के बहाने से राजगृह निवासी अपनी बहिन के लड़के (जो अधिक धनी था) शालिभद्र के पास गया। कहना चाहिये कि -अब पीछा उसका भाग्य फिरा।

वहाँ जाकर धन्यकुमार के मकान के नीचे बैठकर लोगों से शालिभद्र का मकान पूछने लगा। मकान के ऊपर ही धन्यकुमार बैठा हुआ था सो उसने देखकर उसी वक्त पहचान लिया कि ये मेरे पिता हैं। झट से नीचे उतरा और पास आकर उनके चरणों में गिर पड़ा।

बिचारा पिता उस समय फटे टूटे वस्त्र पहने हुये था, गरीब के समान जान पड़ता था, सेठ होने पर भी दरिद्री और उसमें कुछ भेद न था।

राज कर्मचारी और पुरवासी लोग यह घटना देखकर बड़ा ही आश्चर्य करने लगे।

धनपाल यह घटना देखकर बोला - नराधीश! तुम पुण्यात्मा हो, तुम्हारा अखण्ड प्रताप है इसलिये सुखपूर्वक बहुत काल तक पृथ्वी का पालन करो। मैं एक दरिद्री वैश्य हूं और तुम पृथ्वी के मालिक राजा हो इसलिये उल्टा मुझे नमस्कार करना चाहिये न कि तुम मुझे करो। यह सुनकर धन्यकुमार बोला -

आप ही नमस्कार के पात्र हैं। कारण आप मेरे पूज्य पिता हैं और मैं आपका छोटा पुत्र हूं। यह सुनते ही धनपाल के नेत्रों से मारे आनन्द के आंसू गिरने लगे। पुत्र को गले से लगाकर वह रोने लगा। धन्यकुमार की भी यही दशा थी। उन्हें मन्त्री आदि लोगों ने बहुत कुछ समझाया तब भी प्रेम के आंसू का वेग उनसे रुक न सका। बाद में उनको किसी तरह राजमहल में ले गये।

धन्यकुमार ने पिता की वस्त्राभरण और भोजनादि से सेवा कर भाईयों का चरित्र, अपने आने का हाल और राज्य के मिलने आदि की सब कुछ कथा कह सुनायी। बाद में माता और भाई बन्धुओं की कुशल पूछी।

उत्तर में धनपाल बोला - वे सब बड़े ही मन्दभागी हैं। इस

समय उनका जीवन बुरी दशा में हैं, पीछे पुराने ही घर में रहने लगे हैं और पास कुछ भी पैसा नहीं है जो उसके द्वारा निर्वाह कर सके। जब तुम वहाँ से चले आये उसी दिन रात के वक्त घर के रक्षक देवता लोगों ने हम लोगों को निकाल दिये थे इसी से पीछे पुराने घर का आश्रय लेना पड़ा।

हम लोगों में एक तुम ही पुण्यवान थे सो तुम्हारे निकलते ही सब धन भी तुम्हारे साथ-२ विदा हो गया। आज मैं अपने को बड़ा ही भाग्यशाली समझता हूँ जो बहुत दिनों के बाद फिर तुम्हें देख पाया।

पिता के वचन सुनते ही धन्यकुमार ने अपने नौकरों को खूब वस्त्र वगैरह देकर माता भाई आदि को लिवा लाने के लेये भेजे।

जब प्रभावती आदि को धन्यकुमार के समाचार मिले तो उन्हें बड़ी खुशी हुई, वे सब उसी समय वाहनों पर सवार होकर राजगृह आये। उनके आने का हाल सुनकर कुमारअपने साथ और भी कितने राजाओं को लेकर भक्तिपूर्वक उनके लिवा लाने के लिये आधी दूर सामने आया।

रास्ते में अपनी माता को आती हुई देखकर बहुत विनय के साथ धन्यकुमार ने मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। माता भी पुत्र को देखते ही बहुत खुश हुई और उसे गले लगाकर शुभाशीर्वाद देने लगी।

भाई लोग धन्यकुमार को देखकर हृदय में बहुत शर्मिन्दा हुये। यहाँ तक कि मुंह तक ऊंचा करना उन्हें मुश्किल हो गया। धन्यकुमार उनकी यह हालत देखकर बोला -

भाईयो! यह आप ही की दया है जो मुझे इतनी राज्य विभूति मिली है। आप लोग सन्देह छोड़े और हृदय का खटका निकालकर शुद्ध चित्त हो जावें। क्योंकि कर्म के उदय से अच्छा बुरा तो हुआ ही करता है।

धन्यकुमार का सीधापन देखकर उन्होंने उसकी बहुत प्रशंसा की और अपने अपराध की क्षमा कराकर अपने को धिक्कार देने लगे। बाद में धन्यकुमार अपने कुटुम्बियों को लेकर बहुत ठाठ-बाठ के साथ शहर में होकर अपने मकान पर आया। वहाँ पर उन सबका स्नान भोजन वस्त्र गहने आदि से बहुत सत्कार किया गया।.

बाद में धन्यकुमार ने गृहस्थ धर्म के निर्वाह के लिये उन्हें सुवर्ण, रत्न, वाहन और ग्राम आदि सभी कुछ उचित वस्तु खुशी के साथ भेंट दी जिससे वे अपना निर्वाह कर सके।

**उपसंहार -**

राज्य आदि वैभव का मिलना, देवता और मनुष्यों के द्वारा सत्कार का होना और बन्धु लोगों के साथ-२ बहुत कुछ सुख के कारण उत्तम-२ भोगों का भोगना यह सब पुण्य की महिमा है। इसलिये जो सुचतुर हैं उन्हें जरूर ही पुण्यकर्म करना चाहिये।

देखो! धर्म गुणों का खजाना और सबका भला करने वाला है। बुद्धिमान लोग धर्म की सेवा करते हैं, धर्म के द्वारा शुभगति होती है, धर्म मोक्ष का कारण है इसलिये नमस्कार के योग्य है, धर्म को छोड़कर कोई उत्तम वस्तु नहीं दे सकता, धर्म का बीज सम्यग्दर्शन है, धर्म में मैं भी अपने चित्त को लगाता हूँ, हे धर्म! अब तुझे भी उचित है कि संसार में गिरने से मुझे बचावे।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में
धन्यकुमार के राज्यलाभ का वर्णन नामक छठा
अधिकार समाप्त हुआ ॥६॥

# सातवां अधिकार

## धन्यकुमार का सर्वार्थसिद्धि में गमन ।

वीतरागं जगन्नाथां त्रिजगद्भव्यवन्दितान् ।
सिद्धाचार्योपाध्यायान्वन्दे शिरसा परमेष्ठिनः ॥

एक दिन धन्यकुमार के मन में यह विचार उठा कि - किसी तरह धन सफल करना चाहिये सो उसने बड़े-२ ऊंचे जिन मंदिर बनवाना आरंभ किया और उनमें विराजमान करने के लिए सुवर्ण और रत्नों की सुन्दर प्रतिमायें बनवाई। चारों संघ को बुलवाकर बहुत कुछ उत्सव के साथ प्रतिष्ठा करवाई। खूब धन खर्च किया। ये सब काम उसने केवल अपने भले के लिये किये थे।

धन्यकुमार प्रतिदिन अपने घर के जिन चैत्यालय में बहुत कुछ भक्ति तथा महोत्सव के साथ पूजन किया करता था और दूसरों को भी करने के लिये प्रेरणा करता था। क्योंकि जिन पूजा सब सुख की देने वाली है।

जब मुनियों के आहार का वक्त आता तब वह स्वयं अपने घर के आगे खड़ा होकर मुनियों की बाट देखा करता और पात्र का समागम होने पर विधिपूर्वक बड़े विनय भाव से पवित्र आहार देता। भव्य पुरुषों के साथ सदा निर्ग्रन्थ साधुओं की भक्ति सेवा पूजा वन्दना किया करता। उनके मुख से श्रावक धर्म तथा मुनिधर्म

का स्वरूप और तत्वों का व्याख्यान सुनना क्योंकि उसे विरागता बड़ी ही प्रिय थी।

जिस दिन अष्टमी तथा चतुर्दशी होती उस दिन सब राजकाज छोड़कर नियम पूर्वक उपवास किया करता क्योंकि उसे अपने पाप कर्म के नाश करने की बहुत चाह थी। मुनि की तरह निराकुल होकर तीनों काल समताभाव पूर्वक शुद्ध सामायिक करता।

उसने शंकादि दोषों को अपने आत्मा से हटाकर और साथ ही निःशंकितादि आठ गुणों को धारण कर सम्यग्दर्शन की निर्मलता अच्छी तरह कर ली थी क्योंकि यही शुद्धि शिव सुख की कारण है।

यह बात सब कोई मानेंगे कि ज्ञान, तीन लोक के पदार्थ को प्रगट करने के लिये दीपक है सो धन्यकुमार भी अपने अज्ञान को हटाने के लिए बड़े-२ बुद्धिमानों के साथ ज्ञान का अभ्यास सदा किया करता था।

अपने योग्य श्रावक के व्रतों का निरतिचार हर वक्त पालन करता था। दिल में धर्म तथा धर्म के चिह्नों का मनन किया करता था और सुख के लिये हर एक को धर्म का उपदेश दिया करता था।

अपने शरीर के द्वारा जहाँ तक उससे बनता था धर्म पालन करने में किसी तरह की कमी नहीं रखता था। थोड़े में यों कह लीजिये कि धन्यकुमार मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदना से धर्ममय हो गया था।

वह यह बात अच्छी तरह जानता था कि धर्म से धन मिलता है, धन से काम सुख मिलता है और काम के छोड़ने से अनन्त सुख का समुद्र मोक्ष मिलता है। इसलिए अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए मन वचन काय से धर्म का सेवन करने में लगा रहता था।

यह धर्म ही की शक्ति समझनी चाहिये जो धन्यकुमार को सब सुख की कारण राज्य-लक्ष्मी मिली थी। वह हर एक तरह के उत्तम-२ सुख के अनुभव से सुख समुद्र में यहाँ तक डूबा था कि समय कितना बीत गया उसकी भी उसे खबर न रही।

एक दिन धन्यकुमार ने अपनी सुभद्रा नामक स्त्री का मुख कुछ मलिन देखकर उससे पूछा -

प्रिये! तुम क्या यह बात कह सकोगी कि आज तुम्हारा मुख मलिन किस लिये है। जाना जाता है तुम्हें किसी शोकने धर दबाया है।

वह बोली - स्वामिन्! मेरा भाई शालिभद्र बहुत दिनों से धन कुटुम्ब शरीर और सुख सामग्री से उदासीन हो गया है और सदा वैराग्य का चिन्तवन पूर्वक घर में ही तप का अभ्यास किया करता है परन्तु आज यह मालूम हुआ कि वह जिन दीक्षा लेना चाहता है। विभो! उसे मैं बड़े ही प्रेम की निगाह से देखा करती हूँ सो उसका भावी वियोग सुनकर बड़ी दुःखिनी हो रही हूँ।

नाथ! आपके राज्य में मुझे सब तरह का सुख मिलने पर भी केवल भाई का विरह दुःख ही दुःखी कर रहा है। यही मेरे शोक

का हेतु है। यह सुनकर धन्यकुमार बोला - बस! यही दुःख का कारण है ? अभी भी जाकर मैं उन्हें सुमधुर वचनों से समझाये देता हूँ जिससे हम सबको सुख होगा, तुम शोक छोड़ो।

उसे यों समझाकर धन्यकुमार उसी वक्त अपने साले के घर गया और उसे उदासीन देखकर बोला - प्रियवर! आज कल आप हमारे घर पर क्यों नहीं आते हो ? उत्तर में शालिभद्र ने कहा - मान्य! मैं क्या करूँ संयम (मुनिपद) बड़ा ही कठिन है सो उसी की सिद्धि के लिये तपश्चरण का अभ्यास यहीं रहकर किया करता हूँ इसीसे आपके घर पर न आ सका।

धन्यकुमार ने कहा - अच्छा, यदि तुम्हें दीक्षा ही लेना है तो जल्दी करो। यहाँ तप का अभ्यास करने से क्या लाभ हो सकेगा ? अरे! पहिले भी वृषभ आदि बहुत से महात्मा वर्षादि योग के धारण करने वाले हुये हैं और तप के द्वारा मोक्ष गये हैं, क्या उन्होंने भी घर में अभ्यास किया था ? नहीं! किन्तु मेघ वगैरह कुछ भी थोड़ा सा वैराग्य का कारण देखकर असंख्य वर्षों तक भोगा हुआ भी राज्य-सुख देखते-२ निडर होकर छोड़ दिया और तप के द्वारा कर्मों का नाश कर मोक्ष में चले गये। वास्तव में उन्हें ही पुरुषोत्तम कहना चाहिये। तुम डरपोक जान पड़ते हो इसीलिये तप का अभ्यास करते हो।

देखो ! मैं अभी ही इस कठिन दीक्षा को भी बिना अभ्यास ही के ग्रहण किये लेता हूँ। तुम नहीं जानते कि संसार का नाश

करने वाला पापी काल न मालूम कब तुम्हें या मुझे अथवा औरों को लिवा ले जाने के लिए चला आवेगा ?

देखो ! काल गर्भ में रहने वाले, जवान, दीन, दुःखी, सुखी, धनी और निर्धन आदि किसी की कुछ परवाह न कर सभी को अपना शिकार बना लेता है। इसलिये भाग्यवश जब तक वह न आने पावे उसके पहिले ही जिन दीक्षा लेकर हित के मार्ग में लग जाना चाहिये।

क्योंकि जब तक जरा राक्षसी का शरीर पर अधिकार नहीं जमा है तब तक ही मोक्ष सुख का उपाय भी बन सकेगा और जहाँ बुढ़ापा शरीर में घुस गया फिर तप और व्रत का पालन कोसों दूर हो जाता है।

इसलिये जो लोग संसार से छूटना चाहते हैं उन्हें जब तक इन्द्रियाँ अपना-२ काम अच्छी तरह कर सकती हैं तभी तक संयम ग्रहण कर लेना उचित है। क्योंकि जिन लोगों की इंद्रियाँ ठण्डी पड़ जाती हैं वे फिर संयम के योग्य नहीं हो सकते और बिना संयम के तप व्रत वगैरह सार्थक नहीं कहे जा सकते।

मनुष्य तो यह विचार करता रहता है कि आज वा कल अथवा कुछ दिनों बाद तप और व्रत धारण करूँगा और काल है सो पहिले ही आ धमकता है। यह जीवन चारे के अग्रभाग पर ठहरी हुई ओस की बिन्दु की तरह जल्दी नाश होने वाला है और युवावस्था बादल की तरह देखते-२ नाश हो जायेगी।

लक्ष्मी वेश्या की तरह चपल और बुरी है। चोर, शत्रु और राजा वगैरह सदा इसके छीनने की फिराक में रहते हैं, दुःख की देने वाली है और दुःख ही के द्वारा कमाई जाती है। राज्य धूल के समान बुरा, सब पाप का कारण, चंचल और हजारों चिंताओं से भरा हुआ है। कौन बुद्धिमान ऐसे राज्य का पालन कर सुखी होगा ? स्त्रियाँ मोह की बेलि, सब अनर्थ अन्याय की कारण और दुष्ट होती है।

घर में रहना पाप और आरम्भ का स्थान है। शरीर रुधिरादि सात धातुओं से भरा, अपवित्र दुर्गंधित और इन्द्रिय रूपी चोरों के रहने का घर है इसे कौन भला चाहने वाला भोगों के द्वारा पुष्ट करना चाहेगा ?

भोग हर वक्त भले ही भोगे जांय, परन्तु हैं असन्तोष और पाप ही के कारण। अरे! ये होते तो स्त्री के अपवित्र शरीर ही से न ? फिर क्यों कर बुद्धिमान इनके द्वारा सुख की चाह कर सकते हैं ? दुःख का समुद्र और विषम यह संसार अनन्त है, चार गतियों में भ्रमण करना इसका सार है, कोई कहे तो बुद्धिमानों को प्रेम करने के लिये इसमें क्या उत्तम वस्तु है ?

इत्यादि हितकर और वैराग्य के वचनों द्वारा धन्यकुमार ने शालीभद्र के रोम-रोम में वैराग्य ठसाकर उसे मुनिपद के लिये उत्तेजित कर दिया और उससे भी कहीं बढ़ा चढ़ा स्वयं वैरागी होकर जल्दी ही अपने घर पर गया।

शालीभद्र धन्यकुमार का बड़ा भारी साहस देखकर सब धन और घर बार छोड़ कर उसके पीछे ही घर से निकला।

धन्यकुमार ने अपने घर पर आ कर राज्य भार तो अपने बड़े पुत्र धनपाल को सौंपा और आप श्रेणिक, माता पिता भाई और बन्धुओं से क्षमा कराकर शालीभद्र तथा और भी कितने लोगों के साथ श्री वर्द्धमान भगवान के समवशरण में गया।

वहाँ त्रिभुवन स्वामी जगद् गुरु श्री महावीर भगवान की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें भक्ति पूर्वक विनीत मस्तक से नमस्कार किया और उत्तम -२ द्रव्यों के द्वारा उनकी पूजा कर स्तुति करना आरम्भ की -

विभो! आप संसार के स्वामी है, सबका हित करने वाले है, बड़े भारी गुरु हैं, बिना कारण जगत के गुरु हैं और आप ही जीवों को संसार के दुःखों से छुड़ाने वाले हैं।

नाथ! आज आपके चरण-कमलों के दर्शन कर मेरे नेत्र सफल हुये और हाथ पूजन करने से। स्वामिन्! आपके दर्शन के लिये यहाँ आने से पांव भी कृतार्थ हुये और नमस्कार करने से, जीवन धन्य तथा मस्तक पावन हुआ। पूज्यपाद! आज मेरी जिह्वा आपके गुणों का गान करने से सार्थक हुई और गुणों का ध्यान, चिन्तवन करने से मन पवित्र हुआ।

अनाथबन्धो! आज यह शरीर भी सफल हुआ है जो आपके

चरणों की इसने सेवा की और हम भी धन्य हैं जो आपकी भक्ति से सुगन्धित हुये।

भगवन्! यद्यपि यह संसार अपार है परन्तु आपके आश्रय करने वालों को तो चुल्लुभर मालूम देता है, क्योंकि आप इसके जहाज हैं न ?

नाथ!आप अनन्त गुण के स्थान हैं। आपकी स्तुति तो गणधर सरीखें बड़े-बड़े महामुनि भी नहीं कर सकते, तो उनके सामने हम लोग किस गिनती में हैं जो थोड़ें से अक्षरों का ज्ञान रखते हैं। इसलिये- हे देव!आपको नमस्कार है, आपके अनन्त गुणों को नमस्कार है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, तथा सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय के देने वाले को नमस्कार है।

विभो!आपकी स्तुति और नमस्कार का प्रतिफल तपश्चरण के साथ-२ रत्नत्रय चाहते हैं क्या आप दया करेंगे? अथवा हमें आप अपने ही समान बना लीजिये फिर सम्यक्त्वादि तो सहज ही हो जावेंगे। बस यही हमारा इच्छित और इसी के लिये आपके सामने हाथ जोड़े हुये खड़े हैं।

बाद भगवान के कहे अनुसार धन्यकुमार और शालिभद्र आदि सब महापुरुषों ने शाश्वत् मोक्ष सुख के लिये बाह्य और अन्तरङ्ग परिग्रह का तथा मोह का मन, वचन काय की शुद्धि से परित्याग किया और मोक्ष की माता जिन-दीक्षा स्वीकार कर अट्ठाईस मूलगुण लिये।

तदन्तर पापकर्म को निर्मूल नाश करने के लिये अपनी शक्ति प्रगट कर बारह प्रकार तप करने लगे। आलस्य छोड़कर द्वादशाङ्ग शास्त्र पढ़ने लगे जो अज्ञान दूर कर केवलज्ञान का करण है। कभी पर्वतों की गुफाओं में, कभी सूने घरों में, कभी श्मसान में, कभी निर्जन जगह में और कभी भयंकर वन वगैरह में अपने ध्यानाध्ययन की सिद्धि के लिये सिंह की तरह सदा निडर और सावधान रहते थे। तरह-तरह के आसनों के द्वारा तप करते थे।

धर्मप्रचार के लिये हरेक देश पुर ग्राम दुर्ग और पर्वतादि में घूमते थे। अटवी आदि में चलते-२ जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं पर ध्यान करने लग जाते थे। क्योंकि जीवो की दया करना तो मुनियों का प्रधान कर्तव्य होता है न ?

जब चौमासा आता,प्रचण्ड वायु चलने लगती, चारों ओर भयंकर ही भयंकर सा दिखाई देता और सर्प,बिच्छू, मच्छर आदि जीवों की बहुतायत हो जाती तो भी आप शरीर से मोह छोड़कर वृक्ष के नीचे ध्यान पूर्वक महायोग धारण करते।

ठंड के दिनों में शीत से जले हुये वृक्षों की तरह होकर मैदान में अथवा नदी, तालाब के किनारों पर रहते और ध्यानाध्ययन करते।

गरमी के दिनों में सूर्य की तेज किरणों से गरम हुई और जलती हुई अग्नि की तरह बहुत दुःसह गरम-२ शिलाओं पर ध्यानरूप अमृत पान से आत्मानन्द में लीन होकर सूर्य की ओर

मुंह करके कायोत्सर्ग ध्यान धरते वह कर्मों के नाश करने की इच्छा से।

इसी तरह शास्त्रानुसार बहुत से कार्य कठोर, अनन्त सुख-मय मोक्ष की इच्छा से वे हर वक्त किया करते थे। क्षुधा, तृषादि महा कठिन बाईस परीषह तथा हिंसक जीवों के द्वारा दिये हुये घोर से घोर दुःख समता भाव से सहते। आर्त रौद्रादि खोटे ध्यानों को आत्मा से हटाकर धर्म और शुक्ल ध्यान का गुहादि में बैठ कर ध्यान करते। इन्द्रियों को अपने वश में करते महाव्रत की शुद्धि के लिये २५ भावनाओं का वैराग्य बढ़ाने के लिये बारह अनुप्रेक्षाओं का धर्म वृद्धि के लिये दशलक्षण धर्म का, सम्यग्दर्शन की निर्मलता के लिये तत्वों का और मन तथा पांचों इन्द्रियों के रोकने के लिये जैन शास्त्रों का निर्विकल्प चित्त से मनन करते थे। इत्यादि कठिन -२ योग तप इन साधुओं ने जीवन भर पालन किया।

अन्त में धन्यकुमार महामुनि ने चार प्रकार के आहार तथा शरीरादि में मोह छोड़कर अकेले ही निर्जन वन में पर्वत की तरह निश्चल खड़े होकर विधि पूर्वक सल्लेखना स्वीकार की।

पहले ही क्षमादि अच्छे-२ गुणोंके द्वारा कषायों को घटाकर शरीर कृश करने लगे सो थोड़े ही दिनों में उपवासादि के द्वारा सारा शरीर सुखाकर क्षुधादि परीषह जीती।

धन्यकुमार मुनि के मुख और होठ आदि सभी सूख गये थे

तो भी उनमें धैर्य और मनस्विता थी। शरीर में केवल चमड़ा और हड्डियाँ मात्र रह गई थीं तब भी उनका महाबल और क्षमाशीलपना बड़ा ही आश्चर्य उत्पन्न करता था।

कभी बहुत सावधानी से चार आराधनाओं का आराधन करते, कभी पंचपरमेष्ठी पद का और कभी परमात्मा का ध्यान करते। अन्त में सब सालम्ब ध्यान छोड़कर निरालम्ब ध्यान करना आरम्भ किया।

इसी तरह शुभ योग और शुभ लेश्याओं के द्वारा नव महीने तक सल्लेखना का पालन किया और अन्त में प्रायोपगमन *मरण के द्वारा ध्यान और समाधिपूर्वक प्राण छोड़कर तप तथा धर्म के प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि में उपपाद शिला में जन्म लेकर अन्तर्मुहूर्त्त मात्र में अतिशय सुन्दर शरीर के धारक अहमिन्द्र हो गये।

वह अहमिन्द्र और जो अहमिन्द्र देव थे उनके साथ भी अनेक तरह की धार्मिक कथा करता और कभी स्फटिकमणि के बने हुये स्वभाव सुन्दर अपने महलों में अथवा नन्दन वन में खेला करता। तेतीस हजार वर्ष बाद कण्ठ में झरता हुआ अमृत उसका आहार है। और साढ़े सोलह वर्ष बाद उसे श्वासोच्छ्वास लेना पड़ता है।

इसी तरह उत्तम-२ सुख का उपभोग करता हुआ वह अहमिन्द्र सदा सुख-समुद्र में डूबा रहता है। आयु की मर्यादा पूरी होने पर यहीं राज्यकुल में जन्म लेकर मोक्ष जायेगा।

धन्यकुमार मुनि के अलावा शालीभद्रादि जितने मुनि थे वे भी जीवन भर तपश्चरण कर और अन्त में समाधि पूर्वक प्राणों का परित्याग कर अपने-२ तपश्चरण अनुसार सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक गये।

**उपसंहार -**

देखो !दुःखी,दरिद्र अकृतपुण्य केवल दान की भावना तथा थोड़े से दान के फल से धन्यकुमार हुआ और फिर तपश्चरण के द्वारा सर्वार्थसिद्धि में गया। इसलिये गृहस्थों ! इस उदाहरण से तुम्हें भी दान देने की शिक्षा लेनी चाहिये।

गुण के खजाने धन्यकुमार मुनिराज धन्य हैं, उनके गुणों की मैं स्तुति करता हूँ और उन्ही के बताये अनुसार मोक्षमार्ग का सेवन करना चाहता हूँ, उनके लिये मस्तक नवाकर नमस्कार करता हूँ, उन्हीं के द्वारा स्तुति होने की आशा है इसीलिये उनके गुणों का ध्यानकर अपने मन को लगाता हूँ। हे धन्य !क्या मुझे भी अपनी तरह धन्य न करोगे ?

धन्यकुमार मुनि का यह निर्मल चरित्र है इसे लोग भक्ति पूर्वक पढ़ेंगे धर्मसभाओं में बाचेंगे अथवा सुनेंगे वे लोग उत्तम परिणामों के द्वारा उत्पन्न होनेवाले धर्म के फल से स्वर्ग सुख भोगकर बाद में तपश्चरण के द्वारा रत्नत्रय युक्त हो नियम से मोक्ष-सुख के भोगने वाले होंगे।

अन्त में मेरी इस निर्दोष और गुणज्ञ विद्वानों से प्रार्थना है

कि वे लोग थोड़े पढ़े हुये मुझ सकलकीर्ति के द्वारा केवल भक्ति से बनाये हुये इस चरित्र का संशोधन करें।

सारे संसार के हित करने वाले अर्हंत, अनन्त सिद्ध, पञ्चाचार के पालने वाले आचार्य, अपने शिष्य लोगों को पढ़ाने वाले उपाध्याय और स्वर्ग अथवा मोक्ष के लिये उपाय करने वाले तथा कठिन २ तपश्चरण करने वाले साधु लोग मुझे मोक्ष का कारण मङ्गल प्रदान करें मैं उनकी स्तुति करता हूँ।

इस चरित्र के सब श्लोक मिलाकर साढ़े आठ सौ होते हैं।

इति श्री सकलकीर्ति मुनिराज रचित धन्यकुमार चरित्र में
धन्यकुमार सर्वार्थसिद्धि गमन वर्णन नामक
सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ ॥७॥